5/66

R.S.

मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्यः पूर्णमादायः पूर्णमेवाव शिष्यते॥

जनवरी, फ़रवरी सन् १९६५ | सं० ४, ५/१४८-१४९

विनती

दया का रूप प्यारे, तू तो परम दयाल है।
दया दृष्टि दयामय, तूने जीता काल है॥
...त सत्गुरु तुझको कहते हैं, नहीं मैं जानता।
...रा रक्षक हर घड़ी है, मेरा तू प्रति पाल है॥
...रे दाता! शीस पर, मेरे दया का हाथ रख।
...है दानी दीन बन्धू, तू ही दीन दयाल है॥
...या जग कल्याण को, करदे जगत कल्याण अब।
...दुखी संकट विपत में, होगया बद हाल है॥
...रे अंतर में समाया, मेरे स्वांसों स्वांस में।
...है व्यापक यह समझदे, आकाश और पाताल है॥
...ओड़ ममता छल कपट, चतुराई तुझ से नेह जोड़।
और नहीं कुछ मांगता हूँ, ये ही मेरा सवाल है॥
राधास्वामी राधास्वामी, राधास्वामी नाम लूं।
राधास्वामी सर्व रक्षक, सर्व देश कृपाल है॥

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

नारद जी की कथा । ले० दाता दयाल जी ।

नारद जी श्रवण निष्ठा के बहुत बड़े भक्त हुए हैं । श्रीमद भागवत का वर्णन है कि नारद जी पहले कल्प में दासी के पुत्र थे । इनकी माता निर्धन थीं । जब कहीं रोटियों का टिका नहीं रहा तो नारद जी को साथ लेकर ऋषियों के आश्रम रहने लगीं । जो कुछ उनको झूंठन बचती, आप भी खा और इन्हें भी खिलातीं । इस शीत प्रसादी के खाने और भग वत चरित्र के सुनने से इनका मन शुद्ध, पवित्र होगया । दि शक्ति प्राप्त हुई और निपुण हो गये ।

कुछ समय पश्चात इनकी माता का देहान्त हो गया यह जंगल में जाकर तप करने लगे । क्योंकि बिना त हुए किसी की कमाई पूरी नहीं होती । प्राणी लाख पढ़ा, विद्वान हो किन्तु यदि उसने तप नहीं किया है तो स कि वह पूर्ण नहीं हुआ है । तप करने से अन्तर में प्रकाश और इसमें भगवान के दर्शन प्राप्त हुए । भगवान गा गा कर सबको सुनाते हुए विचरते रहे । इनकी वाणी का प्रभाव है । जिसे एक क्षण के भी लिए उपदेश देते समय से वह कुछ का कुछ बन जाता और जीवन प जाता । साधन सम्पन्न और कमाई किए हुए जीवन को बड़ा शक्तिशाली और स्थायी होता है । मौखिक वार्तालाप शास्त्रों की माँग ताँग की बातें स्थायी नहीं होतीं । और जी इस विशेषण से सब में श्रेष्ठ और उत्तम समझे जाते

सुना पढ़ा समझा समझाया, ज्ञान हाथ नहीं आया
जब सतगुरू ने आन चिताया, सहज ही वह धन पा
कथनी कथे तो दूर है हम से, करनी करे सो साथी
रहनी रहे सो गुरू हमारा, रहनी हमको भा

गुरू को खोज करो सतसंगत, फिर करनी चित लाओ।
करनी का फल उदय होइ जब, रहनी जाइ समाओ॥
सतसंगत में श्रवण मनन है, अनुभव में है रहनी।
यह निध्यासन समझो प्यारे, त्यागो मुख की कहनी॥
कहनी तो है भरम कहानी, भरम की समझो खानी।
राधास्वामी भेद बतावें, करनी है सुखदानी॥

विश्वधर्म सम्मेलन देहली। ले०परमदयाल फ़क़ीर साहबजी महाराज

पूज्य जैन मुनि सुशील कुमारजी, संत कृपालसिंहजी व अन्य महात्मा जन जो विश्व धर्म सम्मेलन में एकत्रित हो रहे हैं। उनके चरण कमलों में इस फ़क़ीर का प्रणाम—

दशहरे पर हिन्दू महासभा भवन देहली में मुझे पूज्य जैन मुनि सुशीलकुमार जी, सन्त कृपालसिंहजी और एक माननीय मौलाना साहब के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

चूँकि मेरे निज अनुभव ने मुझे यह निश्चय कराया कि प्रकृति ने संसार के कल्याण हेतु आपके मस्तिष्कों को गतिवान किया है। उसका प्रत्येक कार्य सदैव किसी विभूति द्वारा ही हुआ करता है। इसलिये आप लोग जैन मुनि सुशील कुमारजी की प्रेरणा से इस ओर खिंचे चले आरहे हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मेरा आपकी ओर खिंचाव का होना अनिवार्य है। मौज ने मेरे मस्तिष्क में एक विचार भर दिया है जो कि मुझे दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज वर्मन एम० ए० की पवित्र, पुनीत विभूति द्वारा दिया गया था।

"तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही।
जग कल्याण जगत में आया, परम दयाल सनेही॥"

इस संस्कार के अन्तर्गत मैं अधिक समय से 'मनुष्य बनो' कार करके इस ओर घसीटा जारहा हूँ। बार बार चाहता इस विचार को छोड़ दूं किन्तु प्रारब्ध कर्म या दाता

दयाल जी का संस्कार मुझे उन्मत्त बनाकर घसीटता रहता है। इसलिये इस उन्मत्तता में यह लेख आपके चरणों में भेंट करता हूं। मैं अपने स्पष्ट वर्णन के लिए क्षमा चाहता हूं। क्योंकि मानवीय मस्तिष्क में एक अहंकार है जो कि पूर्ण रूपेण किसी दूसरे की बात को प्रत्येक दृष्टिकोण से सोचने नहीं देता। और वह अपने अहंकार से प्रत्येक बात को अपने अहंकार के साथ मिलाने का प्रयत्न करता है। जहां मेल नहीं खाता, वह या तो विरोध करता है या इसकी सुनता ही नहीं। इस दोष से यद्यपि मैं लाख कहूँ कि मैं स्वयं वंचित हूं किन्तु मैं अपने में कमी प्रतीत करता हूँ। यद्यपि मैं प्रयास करता रहता हूं कि मेरा अहंकार न रहे। दाता दयाल जी का भी मेरे लिए यही आदेश है।

न अपना नाम रखना तुम, न दुनियाँ में निशाँ रखना।
नहीं की जब गयी आदत, ज़बाँ पर तब न हां रखना॥

पूरा शब्द पृष्ठ ३० दिसम्बर अंक में देखिए।

यदि मैं भली भांति इस वाणी का साधक होता तो मैं यह लेख न लिखता। अहंकार कुछ शेष है, इसलिए लिख रहा हूं। क्या पता यदि इस धर्म सम्मेलन से पूर्व यह अहंकार समाप्त हो जाए तो मैं जैन मुनि सुशील कुमार जी के मौखिक निवेदन पर जो उन्होंने मुझे इस अवसर पर आने के लिए दिया है, न उपस्थित हो सकूँ।

जो कुछ मैंने खोज की है, उसके आधार पर अपना अनुभव आप लोगों के चरण कमलों में विश्वधर्म पुस्तक भाग २ के रूप में लिखकर सहायक सम्पादक शिव को भेज दिया है। वह समय पर भेंट हो जायगा। इस समय मेरी समझ में मुख्य बात जन संख्या का अधिक होना और खाद्य पदार्थ का उत्पा कम होना है और यही कारण हमारे दुखों का हो रहा है।

प्रत्येक धर्म किसी बात में सफलता के लिये त

महिमा गाते हैं। हिन्दू शास्त्र भी तप का राग अलापते हैं। जैन और बुद्ध धर्म की नींव भी तप है इस्लाम में भी बलिदान है। अन्य शब्दों में तप एक प्रकार का बलिदान है। विभिन्न प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने के लिए विभिन्न प्रकार के तप या बलिदान करने पड़ते हैं। उनकी आकृतियां स्थितियों और परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न हो सकती हैं।

मेरी समझ में इस समय देश के यदि कुछ नवयुवक जोड़े स्त्री पुरुष स्वस्थ होते हुये यह तप या बलिदान करें कि वह १५ वर्ष तक सन्तान उत्पन्न न करें तो उनके इस तप और बलिदान के प्रताप से संसार का बहुत कुछ उपकार हो सकता है। किन्तु यह सन्तान का न उत्पन्न करना परिवार नियोजन के अन्तर्गत न हो वरन इसका वह लाभ न होगा जिस लाभ को प्राप्त करने के लिये मैंने अपना विचार व्यक्त किया है।

मेरी आयु ७७ वर्ष की हो गई, इसलिये मैं यह तप नहीं कर सकता। यद्यपि मैंने जहां तक हो सका अपने विचार को जगत कल्याण हेतु विभिन्न ढंग से वर्णन किया है। यद्यपि उसका मेरे समक्ष कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं आया और न मैं जानना ही चाहता हूँ। किन्तु इतना विश्वास है कि कम से कम देश का बुद्धिमान वर्ग मानवता शब्द का प्रयोग कर रहा है। शासन में भी समाजवादी नाम के सहारे एकता, प्रेम आदि की ओर ध्यान आकर्षित हो रहा है। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक प्रसन्नता की यह बात है कि आप समस्त विभिन्न धर्मों के गुरू या आचार्य एक मंच पर आरहे हैं।

संसार में पुन्न, दान की बड़ी महिमा है। सबसे बड़ा दान अन्नदान है जो हमारे मानवीय जीवन में सहायक है और इससे भी बड़ा दान ज्ञान है, जिससे हमारा मानसिक और आत्मिक कल्याण हो सकता है।

अन्नदान का सबसे उत्तम उपाय मेरी समझ में इस समय यह है कि मानव संतान बहुत ही कम उत्पन्न करें क्योंकि भूमि तो इतना अन्न उत्पादन नहीं कर सकती जो जन संख्या के लिये पर्याप्त हो। इसलिये कम संतान उत्पन्न करने से, फलतः मानव केवल इस दान के विचार से कम संतान उत्पन्न करें, तो क्या होगा? जितनी संतान कम उत्पन्न होगी, उस संतान से आगे जो संतान होगी, तो जो खाद्य पदार्थ उन लोगों को खानी है वे भी वर्तमान मानव जाति के लिये प्रयोग होगी। इसलिये सहस्रों ब्राह्मणों तथा भूखों को भोजन देने का जो पुन्य होगा वह इन व्यक्तियों को मिलेगा जो इस भाव से कम संतान उत्पन्न करेंगे।

सम्भव है आप लोग अथवा अन्य व्यक्ति मुझे उन्मत्त समझें किन्तु गुरु ऋण से उऋण होने के लिये मैं इस कटाक्ष कि मैं उन्मत्त हूँ कि परवाह न करता हुआ संसार के कल्याण हेतु अपना कर्तव्य पालन कर रहा हूं। मैं सोच रहा हूं कि आप विभिन्न महात्मा जन अपने अपने अहंकार के कारण सम्भवतः मेरे साथ सहमत न हों। किन्तु जो अनुभव मेरे हैं, उनके आधार पर आप महान पुरुषों के चरण कमलों में यह निवेदन करने से रुक नहीं सकता (कि यथा राजा तथा प्रजा) जैसा गुरू वैसा शिष्य, जैसे माता पिता वैसी संतान, इनके मानसिक विचारों पर निर्भर है। मैं या आप जनता के सुधार के लिये प्रचार का काम करते हैं। मेरे या आपके मिलने वाले जो हमें साधू, महात्मा, संत समझकर हमारा आदर मान करते हैं, उनमें वही संस्कार जायेंगे, जो हमारे अंतर हैं। जो शिक्षा मुझे मिली, उसके आधार पर आपको एक दाता दयाल जी का शब्द सुनाता हूँ।

नर भोगें बारम्बार, अवश्य फल कर्म किये का।

तू सोच समझ पग धार, मर्म जग जन्म जिये का ॥

(पूर्ण शब्द फ़कीर शब्दावली से पढ़ें)

इस शब्द में बहुत कुछ है केवल संक्षेप में संकेत करता हूँ राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। सीता पतिव्रता स्त्री थीं। जो कष्ट आपत्ति सीता को हुई उसका मूल कारण मेरी समझ में उस का लक्ष्मण पर जो कि एक सच्चा साधू था। जिसके हृदय में राम और सीता के लिये सच्चा हित और प्रेम था। चूंकि सीता ने उसके भाव पर अपने पति के मोह वश संदेह किया। उसका परिणाम उसने भुक्ता। राम को पता था कि सीता सच्ची है, निर्दोष है और इस पर भी राम ने उसकी परीक्षा ली जिन्होंने फिर भी लोक लाज के लिये अपनी मर्यादा को स्थापित रखने के लिये सीता का निर्वासन किया था। परिणाम यह हुआ कि वह संसार से उदास होकर सरयू नदी में जाकर डूब मरे। एक ही उदाहरण पर्याप्त है। जो महात्मा अपनी ग़लत मान प्रतिष्ठा और अपनी गुरू प्रणाली या महन्त प्रणाली को स्थापित रखने के लिए हेर फेर कर संसार को अपने पीछे लगाते हैं उनके क्रियात्मिक रहनी के प्रभावों से दूसरों पर क्या प्रभाव होगा यह सब जानते ही हैं।

इसलिए मैं पुकार किए जा रहा हूँ कि मानव जाति का कल्याण माता पिता, हमारे शासकों और धार्मिक आचार्यों के हाथमें है। मानवीय अस्तित्व एक रेडियो स्टेशन है। इसके अंतर से जैसा वह है उस प्रकार की रेडियेशन तथा धारें निकलती रहती हैं। इस बात का प्रमाण कि रेडियेशन है वर्तमान वैज्ञानिकों ने दिया है और सब जानते हैं। पुलिस विभाग के कुत्ते चोर या डाकू के किसी वस्त्र को सूंघ कर उस गन्ध को वायु से लेते हुए जिस व्यक्ति से वह गन्ध निकलती होती है वहीं तक पहुँच सकते हैं। यदि वर्तमान आप महात्मा जन सचमुच

अपने अन्तर मानव जाति के सच्चे हित की वासना रखते हैं तो यह असम्भव है कि संसार का कल्याण न हो। क्योंकि आप जहां जहां भ्रमण करेंगे अपने प्रभाव छोड़ते जांयगे।

इसलिए मैंने दशहरे के सतसंग पर इन महापुरुषों के समक्ष कहा था कि यदि वर्तमान वैज्ञानिक अपने अपने अनुभवों से संसार को लाभ पहुँचा सकते हैं तो यह संत और महात्माजन यदि इनका अध्यात्म या धर्म कोई शक्ति रखता है तो यह संसार का कल्याण करें। वरन अपने अपने धर्मों और सिद्धान्तों के प्रचार को छोड़ दें। क्योंकि इन धर्मों और पंथों की त्रुटि पूर्ण समझ और ग़लत साधन ने मानव जाति को बांट दिया है।

आज एक फ़ौज का नवयुवक अपनी पत्नी सहित मानवता मंदिर में आया। उसने मुझसे कहा कि मैंने उसकी अत्यंत सहायता की है। मैं तो उसको पहचान न सका कि वह कौन है? तो फिर उसकी सहायता करने वाला कौन था।

उसका विश्वास, उसकी श्रद्धा। मैंने विरोध की परवाह न करते हुए सचाई की घोषणा की है कि ऐ मानव! तेरा सहायक तेरा अपना ही मन है, आपा है, ईमान है और तेरा अपना ही विश्वास है, तेरा अपना ही साधन अभ्यास है। तू अपने कर्मों को श्रेष्ठ बनाले।

जीव निबल अबल, अज्ञानी है। इनकी निबलता, अबलता और अज्ञान को मिटाना आप हात्माओं का मुख्य कर्तव्य है। इस लेख को लिखाने के पश्चात मैं अपने उस कर्तव्य को पूरा कर रहा हूँ जो प्रकृति ने या मौज ने मुझको प्रदान किया। मैं आशा करता हूँ कि मैं शान्ति पूर्वक प्राण त्यागूँगा।

यदि मेरी वाणी से किसी का अपने अहंकार वश हृदय

दुखे तो हाथ जोड़कर क्षमा चाहता हूं।

नोट—इस ज्ञान के आधार पर जो प्राप्त हुआ आज खेद करता हूं कि यदि यह ज्ञान न हुआ होता तो मैं अत्यंत भाग्य-शाली पुरुष था क्योंकि "Ignorance is a bliss" और जब वर्त्तमान देशीय, धार्मिक, सामाजिक और घरेलू जगत् के भावों और विचारों का ख़याल आता है तो उसके परिणाम को देखकर यह कहना पड़ता है कि मानव जाति का भविष्य, अंधकार में है। होना वही है जो राम रचि राखा। किन्तु उस होने में यह मेरा लेख भी सम्मिलित है। मौज अपनी सँभाल करे। वह आप ही जगत आधार है। हम सब उसके शस्त्र हैं। जैसा-जैसा समय आता है, जो प्रकृति को कराना होता है, वैसी वैसी सामग्री उत्पन्न कर देती है।

ग़ज़ल पीरेमुग़ाँ साहब।

जहां देखा तुम्हें देखा, यहाँ तुम हो वहाँ तुम हो।
तुम्ही हो ज़ाहिरो बातिन, निहां तुम हो अयां तुम हो॥
तुम्ही महदूद लामहदूद, तुमसे कौन ख़ाली है।
बतायें कैसे किस जा, कैसे रहते हो कहां तुम हो॥
कहीं ख़ुरशीद रौशन हो, कहीं जुगनू कहीं ज़र्रा।
जहाँ है जलवागाह और इस जगह, जलवा कुनाँ तुम हो।
समर हो नख़्लो बर्गो शाख़ हो, और बीजो बुन हो ख़ुद।
रगों में अर्क़ बनकर इनमें, हरजानिब रवाँ तुम हो॥
ज़मीं से चढ़ गये अफ़लाक पर, और दोनों को देखा।
समझ में आया अपने तुम, ज़मीं हो आस्मां तुम हो॥
निहाँ हो क़तरा क़तरा में, अयाँ हो बहर की सूरत।
हुबाबो मौजो दरिया बनके, बहरे बेकराँ तुम हो॥
गुल और गुन्चा हो ख़ुशबू इनकी, हुस्नो रंग दिखलाकर।
गुलू में काली कोयल के, चमन में नग़मा ख़्वाँ तुम हो॥

तुम्ही हो पूछने वाले, सवाली और जवाबी बन।
तुम्ही हो जिस्मो जाँनो चश्म, दिल नोशो ज़बां तुम हो॥
कहीं हो लाला मोहनलाल नैयर, कारख़ाने में।
मशीन साफ़ करने वाले हो, अंजन कुशां तुम हो॥

उपराम [ले० परम दयाल जी]

स्वभाव में उपराम आ गया। क्यों आया? यह प्रकृति का नियम प्रतीत होता है। वस्तु बनती है, कुछ समय खेल करती है, फिर समाप्त होजाती है। मैं वास्तविकता, सत्यता, उस मालिक या कोई और नाम रक्खो, उसकी खोज में निकला था। खोज करता करता उस अथाह समुद्र के निकट आ गया हूं। जहाँ यदि एक पग आगे चला जाऊँ तो न मैं न तू, न यह न वह, "चिरग़ा गुल पगड़ी ग़ायब" जब मैं अकेला होता हूँ तो अपने समस्त जीवन की खोज, संघर्ष, जिज्ञासा, मेरे समक्ष आती है, तो मैं हँसता हूं। जिस प्रकार स्वप्न दृष्टा स्वप्न देखता रहता है। जब चेतनता आती है तो सब खेल समाप्त। अभी पुराने संस्कारों, जो कुछ कि जीवन में किया, उनके चिन्ह मध्यम रूप से मस्तिष्क में विद्यमान हैं। दाता दयाल जी से मेल-मिलाप, उनका प्रेम, उनकी वाणी क्या निकले? सच कहता हूँ तो संसार काफ़िर कहेगा, किन्तु वास्तविकता वह है कि वह सब स्वप्न ही थे। चूँकि मैंने कहा कि वह चिन्ह विद्यमान हैं। अनेक बार विचार आता है कि दाता ने मुझे निबल-अबल और अज्ञानी जीवों की सहायता करने के लिये और जगत कल्याण हेतु विचार दिया था। सोचता हूँ क्या यह विचार भी स्वप्न नहीं है? अनेक बार सब कुछ स्वप्न समझकर अपने अस्तित्व को भूल जाता हूँ। किन्तु फिर समय आ जाता है। यह संसार भास्ता है और जो फिर भास्ता है, वह पूर्व जन्म के

कर्मों के अथवा विचारों के साथ ही कर्म का चक्र चलता है। फिर सोचता हूं कि यदि पहला भी स्वप्न था तो फिर इस स्वप्न के निश्चय हो जाने के पश्चात् जो उत्थान होता है, तो उस उत्थान में पिछले कर्मों या विचारों का क्रम क्यों स्थित रहता है? इसलिये साहस नहीं होता है कि वेदान्तियों की भांति इस संसार को मिथ्या अथवा स्वप्नवत् ही कहूँ। इसलिये मैं विवश हो गया कि स्वामी जी महाराज के साथ सहमत हूं, कि वेदान्त काल और माया के अन्तर्गत है।

वास्तविकता यह है कि जब तक शरीर स्थित है, जीवन विद्यमान है और यह किसी नियम पर चल रहा है।

इस अनुभव के आधार पर सोचता हूँ, क्या मैं वास्तव में जगत कल्याण आदि जैसा कि दाता दयाल जी ने मेरे सम्बन्ध में कहा है, के लिये आया हूँ। यदि आया हूं तो मैं क्या कर सकता हूँ। जहां तक मौज अर्थात वह नियम जिसके सहारे संसार बना हुआ है उसको स्पष्ट करके वर्णन कर चला। मेरे पास केवल हित और मत है। मत तो मैंने आवश्यकता से अधिक जीवन बिताने के नियमों को वर्णन करने में और वास्तविकता और सत्यता का क्या रूप है जो भी शब्द मुझे मिल सके उनके द्वारा वर्णन कर दिया। 'हित' केवल यही कर सकता हूं कि सच्चे हृदय से चाहता हूं कि मानव जाति को सुख शान्ति मिले। यदि दो डेढ़ वर्ष के भीतर शासन में मानवता आजाये, हमारा पारस्परिक धार्मिक मतभेद और द्वेष समाप्त हो जाये तो फिर यह मानना पड़ेगा कि कोई सन्त जो सच्चे अर्थ में सन्त है, कुछ कर सकता है, वरन् मैं यह कहने का साहस करूँगा कि प्रत्येक धर्म और पन्थ की शिक्षा रोचक और भयानक है जिससे कि इस शिक्षा से मानव भावुक होकर प्रारम्भ में अपने जीवन की गढ़त कर जावे।

मैं खोजी हूं, अन्ध विश्वासी नहीं हूँ। समय सिद्ध करेगा कि यह अध्यात्मिक जगत वाले कुछ शक्ति रखते हैं अथवा नहीं।

मैंने जैन मुनि सुशील कुमार जी, सन्त कृपालसिंह जी व अन्य एक दो महान पुरुषों को हिन्दू महासभा भवन देहली में दशहरा सतसंग के अवसर पर जनसाधारण के समक्ष कहा था कि यदि अध्यात्म या आत्मिक अवस्था कोई शक्ति रखती है तो यह वर्तमान और भविष्य में आने वाले महात्मा जन या महापुरुष संसार के कल्याण के लिये कुछ करके दिखायें, वरन् इन बड़े बड़े महापुरुषों के नाम के झंडे फहरा रहे हैं। लाखों और करोड़ों रुपया इन महा पुरुषों के जन्म दिवस पर या उनकी स्मृतियों के लिये व्यय हो रहा है। निर्धन, अज्ञानी और भ्रम ग्रस्त जीवों की आंखों में धूल डालकर, उन्हें हरा उद्यान दिखाकर, अपना पशु बनाया जा रहा है।

मैंने जीवन में यात्रा की है और कहता हूं कि इन महा-पुरुषों, सन्त जनों में यह गुण अवश्य है कि वह मानव के भ्रम, शंका, सन्देह निवारण करके शान्ति दिला देते हैं और आवागमन एवं मुक्ति के भ्रम से बचा देते हैं। मेरा अनुभव एक सच्चे शिष्य और एक सच्चे गुरू के नाते यह सिद्ध करता है कि बात का बतंगड़ रोचक और भयानक शिक्षा के अन्तर्गत बनाया गया है। जिनके अन्तर कोई राम, कोई कृष्ण, कोई गुरू, कोई मोहम्मद, कोई देवी देवता प्रगट होते हैं, वह वास्तव में लोगों का अपना ही विश्वास, श्रद्धा और भावना है। यदि संसार को यही बात बता दी जाय कि ऐ मानव! तू अपने मन, बचन और कर्म को शुद्ध कर ले तो यह अधिक लाभ-दायक सिद्ध हो सकती है।

अध्यात्म कुछ और वस्तु है। वह केवल शब्द और प्रकाश का मंडल है, बल्कि उससे परे भी कुछ है। इस अज्ञान के कारण मानव जाति परस्पर बंट गयी। मैंने सत्यता और स्व-

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

च्छुता से कार्य किया है, केवल इस भाव से कि संसार का कल्याण हो। अब प्रार्थना करता हूं कि मालिक अपनी गोद में लेले।

[१] कलामे नन्द

बात दानाओं की नादां, मानने वाले नहीं।
लख़्त जो अंजान हों, वह जानने वाले नहीं॥
मत के भतवालों को, क्या समझाये कोई राज़ को।
यह नहीं समझेंगे हरगिज़, मारफ़त के साज़ को॥
जो भरम में पड़ गये, भरमे हुए हैं रात दिन।
यह गँवांते ही रहेंगे, ज़िन्दगी के सालो सन॥
सौहबते मुरशिद से इनको, कब पड़ा है राब्ता।
यह हैं शरई शरे से, रहता है इनको वास्ता॥
कुछ दिनों सौहबत करें, तब नुक्तों की आवे समझ।
जब नहीं मुर्शिद तो फिर, कैसे कोई पावै समझ॥

[२]

नेकी का रास्ता लो, और नेक काम करलो।
दामन को दिल के मक़सद के मोतियों से भरलो॥
नेकी का इस जहां में, मिलता है नेक समरा।
नेकी का नेक समझो, हर वक्त तुम नतीजा॥
बेख़ौफ़ बन के नेकों की, राह को पकड़ लो।
छोड़ो बदी को नेकी को, अपने मन में भरलो॥
गुरूदेव की हिदायत हरदम, रहे नज़र में।
मक्खी शहद की बनना, फूलों के रस को भरलो॥
कहते हैं राधा स्वामी, सत्वक्ता उनको मानो।
माया भरम को छोड़ो, सतगुरू को मन में धरलो॥

पौल पोप इटली । ले०—परमदयाल जी।

आज कोई मल्होत्रा साहब हैं। उनका पत्र आया है। वह लिखते है कि इटली से कोई बड़े पोप साहब बम्बई आ रहे हैं। और मुझ से आशा करते हैं कि मैं वहां उनसे मिलूं। और अध्यात्म के विषय में विचार विमर्श करूँ। जो कुछ उत्तर उन्हें देना था दे दिया। अब अकेला हूं। अपना समस्त जीवन, उसकी खोज और उसका परिणाम समझ आया। अध्यात्म, आत्मिक अवस्था, आत्म पद आदि के शब्द पचपन से सुने थे। और वहाँ तक जाने की लालसा थी। चूंकि प्रण किया था कि अपना अनुभव वर्णन कर जाऊँगा, इसलिए लिख रहा हूं।

अध्यात्म या आत्मिक अवस्था हमारे जीवन की एक दशा है, जिसमें शारीरिक और मानसिक बोध-भान नहीं रहते हैं। बल्कि एक प्रकाश और शब्द की हमारी अपनी ही दशा है। चूंकि इस अवस्था में अर्थात् आत्मिक अवस्था में साधन करने वाले के अन्तर शारीरिक और मानसिक बोध-भान नहीं रहते, इसलिए उस शक्ति के आजाने से जिस शक्ति के कारण वह मानसिक और शारीरिक बोध-भान को छोड़ सकता है। ऐसी आत्मिक अवस्था में रहने वाला पुरुष, जब वह मन और शरीर में आता है तो शारीरिक और मानसिक बोध-भान दुख दायी व सुख दायी नहीं रहते या कम सुख दायी व दुख-दायी प्रतीत होते हैं।

दूसरे शब्दों में वह अचिन्त, अडोल और निर्भय रहता है। यही पहिचान ऐसे आत्मिक अवस्था में रहने वाले की हो सकती है। वह भी उनको जो उनके निजी जीवन से परिचित होते हैं। वरन् मानव अपनी कमज़ोरियों को जन साधारण के समक्ष काबू रख कर दुखी-सुखी होता हुआ भी अपने

आप को जनसाधारण में अध्यात्मिक पुरुष कहलवाने का प्रयत्न करता है।

जो मानव शारीरिक जीवन और उसके आराम और आनन्द के लिए ही काम करता रहता है। वह देह प्रेमी है। वह शारीरिक रूपमें मानव है। जो विचार के चक्र में ही यह किया वह किया इसमें रहता है वह संशय जनक मन मत कहलाता है। जो अपने आप को प्रकाश और शब्द स्वरूप में रखता हुआ संसार में अचित और निर्भय होकर रहता है यह अध्यात्मिक पुरुष कहलाता है। यह मेरे निज अनुभव के आधार पर मेरा स्वयं अनुभव है।

कोई व्यक्ति जब तक अपना इष्ट किसी शरीर को या विचार को बनाये रखता है वह अध्यात्मिक पुरुष नहीं हो सकता है। क्योंकि इष्ट सदैव विचार से उत्पन्न होता है, विचार मन से निकलता है। इसलिए कोई प्राणी चाहे वह किसी धर्म का मानने वाला है। जब तक वह किसी मनुष्य को अपना इष्ट अर्थात् उपास्य देव बनाये रखता है वह प्रकाश व शब्द स्वरूप हो ही नहीं सकता है।

इसलिए राम कृष्ण भक्त, हज़रत मोहम्मद और ईसामसीह के पुजारी या किसी मानवीय अस्तित्व का पुजारी अध्यात्मिक नहीं बन सकता है। अध्यात्म के लिए पूर्ण गुरू की आवश्यकता है, जो मानव को वाह्य गुरू के जाल से भी निकाल दे।

मैं फिर भी कहता हूं कि जन साधारण मेरे लेख से घृणा करेंगे किन्तु मैं क्या करूँ विवश हूँ। जितनी भी बातें सुनीं थीं कि किसी के अन्तर राम प्रकटा, किसी के अन्तर कृष्ण, किसी के अन्तर ईसामसीह या कोई और वह मेरे अनुभव के आधार पर मानव का अपना ही विश्वास, श्रद्धा और भाव सिद्ध हुआ। यदि किसी बाहर के हिपनोटिज़्म या मिसमिरेज़िम के

साधक ने अपने बिचार से दूसरे के विचार को बदला तो वह मन के चक्र से तो बाहर नहीं निकला ।

इसलिये हिन्दुओं के वैदिक युग में सावित्री या शब्द ब्रह्म का इष्ट अध्यात्म के प्राप्त करने के लिये दिया हुआ है। इस्लाम धर्म में नूर तथा प्रकाश का संकेत है जैसा कि प्रणायाम् के गायत्री मंत्र में भी है।

ईसाई धर्म में भी (word) आवाज़ का संकेत है। किन्तु चूँकि मैंने उनकी पुस्तकों का अध्ययन नहीं किया है न इसकी आवश्यकता ही प्रतीत करता हूँ। फिर भी मेरा भाव यह है कि अध्यात्म हमारा शब्द और प्रकाश का जीवन है। हैं तो हम पहले ही शब्द व प्रकाश स्वरूप किन्तु हमारे ऊपर शारीरिक और मानसिक कोष चढ़े हुये हैं, इसलिए हम इस अपने अध्यात्म से जो कि हम स्वयं हैं वंचित हैं।

जिसकी रुचि हो, जो चाहता हो वह प्रबल इच्छा अपने अंतर उत्पन्न करे। और स्वयं मौज मार्ग निकाल देगी।

जब मुझे आवश्यकता थी मैं स्वयं दातादयाल जी के दरबार में जाया करता था। अब मुझे आवश्यकता नहीं रही क्यों व्यर्थ अध्यात्म के लेने या देने के लिये कहीं जाऊँ और घर घर मारा मारा फिरूँ।

परमदयाल जी का पत्र मलहोत्रा जी के नाम

इटली के पोप साहब के भारतवर्ष में आगमन पर आपने मुझे उनकी संगत से लाभान्वित होने के लिए लिखा। मेरा उत्तर यह है कि अब जीवन धार्मिक जगत से ऊँचा चला गया है। मैं स्वयं धर्मों का अनुयायी था, जहाँ मानव का मन कोई इष्ट बनाकर उसके साथ लग कर भक्ति व प्रेम से अपना मनानन्द लेता है, वह धार्मिक अनुयायी है। यह जितने भी धर्म,

पन्थ और साम्प्रदाय संसार में हैं यह सब मन के मंडल में हैं। दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के शुद्ध स्वरूप की दया से मैं इस मन के चक्र से निकल गया। अर्थात मुझे कोई मानसिक दुख, सुख, आनन्द बे आनन्दी अपनी ओर अब खींच नहीं सकता है। चूँकि मुझे निज अनुभवों ने जो दाता दयाल महर्षि जी की दया से प्राप्त हुए हैं, निश्चय करा दिया है कि प्रत्येक प्राणी का उपास्यदेव चाहे वह राम है, कृष्ण है, ईसामसीह है, हज़रत मुहम्मद है या कोई और है, वह उसका अपना ही माना हुआ इष्ट है। मानव का मन एक महान शक्ति शाली तत्व है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के भाव विचार, एकाग्रता की दशा में इस मानसिक जगत में आश्चर्य जनक दृश्य दिखाते हैं और मानव जो वास्तव में मानव है, या जो तत्व मानव के अन्तर है वह उस मानसिक खेल में फँसा हुआ है।

भक्त, उपासक, योगी, ज्ञानी, ध्यानी, तपसी, मुनी, पीर, पैगम्बर, रसूल और अवतार सब के सब इस मानसिक जगत के खेल में खेल रहे हैं और समस्त जगत इस संकल्प के जीवन में एक विशेष प्रकार के चक्र में है। इसलिए मैं इन धार्मिक महापुरुषों का आदर करता हूं। क्योंकि इन धर्मों के कारण मानवीय मन को विशेष प्रेम और आनन्द मिलता है। किन्तु इस अज्ञान के कारण कि है तो सारा खेल इस मन का किन्तु मानव यह न जानता हुआ परस्पर बँट गया। और इस अज्ञान के कारण मानव जाति में मत भेद, विरोध और द्वेष भी उत्पन्न हो गया है। जिसका परिणाम धार्मिक उत्पात, रक्त पात इतिहास सिद्ध करता है।

मैं इस संसार में धर्म को उन्नति या अवनति देने को नहीं आया बल्कि धर्मों की वास्तविकता बताने को आया हूँ।

मज़हब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन है, हिन्दोस्तां हमारा॥

जब तक मानवीय सुरत किसी धर्म की अनुयायी है अर्थात कोई न कोई अपना कल्पित इष्ट रखती है, वह परम शांति, परमानन्द और सुख को प्राप्त नहीं कर सकती है, दुख, सुख, हर्ष, शोक, जन्म मरण के चक्र से न निकलेगी। इसलिए मेरा मार्ग मन से ऊपर रहने का है। जहां न अनेक वाद है, न द्वेत वाद है न अद्वैत वाद है। वह है क्या? अध्यात्म से ऊँचे जाओ Go beyond the soul or spirit और मैं वहां का बासी (रहने वाला) हूं। इस वास्तविक और सच्चे मालिक Infinity जो रचना Creation से परे है, उसके आदेश से आया हूँ अर्थात उसकी मौज से इस शरीर में हूं। क्यों आया हूँ? यह बताने के लिये कि ऐ मानव जाति? तू अपने वास्तविक देश और निज घर को भूल गई है। यह सारा संसार एक खेल है। आया था खेलने को किन्तु खेल में फँस गया। धर्म, पन्थ, साँसारिक, व्यवहार व अन्य जीवन के विभिन्न विभाग यह सब खेल हैं। खेल में अहंकार उत्पन्न हो गया और खेल की हार जीत में हम फँसे हुये हैं। और यह अहंकार अज्ञान के कारण है। चूँकि मैं इन समस्त धर्मों और संसार को खेल ही समझता हूँ, इसलिये मुझे क्या आवश्यकता है कि किसी के पास जाऊँ? क्यों जाऊँ? दाता दयालजी ने रहस्य बता दिया। मैं अपने सच्चे मालिक के दरबार में रहता हूं। जो मौज कराती है, करता हूं, इसलिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

इतना कहता हूँ कि ऐ मानव जाति! तू मनुष्य बन न कि हिन्दू ही न मुसलमान ही न ईसाई ही। क्योंकि हमारा वास्तविक मालिक एक ज़ात है। हम सब उसी के घर से आये हैं।

ढूंढ़ राव जी के नाम दाता दयाल जी का पत्र

ढूंढ़ने निकले तो ढूढ़ो, ढूढ़ने का हो ख्याल।
उसका मिलना सहल और आसान है, नहीं अमरे मुहाल॥
जुस्तजू से पहले लेकिन, उसका लेना है पता।
बे पते के ढूढ़ोगे कैसे, कहां सोचो ज़रा॥
है मुहीते कुल नहीं इसमें है, शक शुभा कोई।
राज़ वहदत का मिलेगा, जब मिटे राज़े दुई॥
वह न मसजिद में है साकिन, वह न मंदिर में मुक़ीम।
ढूढ़ने निकले वह, जिसको मिलगई अक़्ले सलीम॥
दिल में उसकी है जगह, दिल में करो उसकी तलाश।
वह मिलेगा दिल के अंदर, राज़ करता हूं मैं फ़ाश॥
दिल में रहता है जो, उसकी जुस्तजू भी दिल में हो।
जो न दिल में ढूढ़ेगा, पायेगा क्यूँकर सोच लो॥
दिल में जलवा उसका है, वह दिल मेंहै जल्वा कुनां।
बात सच्ची कह रहा हूँ, वह नहीं है ईंओ न आं॥
जुस्तजू हो दिल के अंदर, दिल के अंदर जुस्तजू।
गुफ्तगू भी दिल में हो, और दिल के अंदर शुस्तोशू॥
ढूंढने वाले बने जब, दिल में उसको ढूँढ लो।
वह मिलेगा बेगुमां दिल में, यकी अपने रखो॥

पत्रोत्तर परम दयाल जी, श्री हंसराज महता जी के नामः—

आज मुझे आपका पत्र मिला। आप लिखते हैं कि मैं एक निजी उलझन में हूँ। आपने हुजूर महाराज सन्त कृपालसिंह जी से नाम लिया था। उनके आदेशानुसार साधन किया। आपको व्यास का एक सतसंगी मिला। उसने कहा हुजूर महाराज सरदार साँवनसिंह जी की आज्ञा के अनुसार बाबा चरनसिंह जी ही नाम दे सकते हैं औरों को नाम देने का अधिकार

नहीं। इन्होंने अपनी गद्दी अपनी इच्छानुसार बनाली है। इनसे नाम लेने में कोई लाभ नहीं। पन्थ और पोथी में ऐसा कहा है कि पूरे गुरू से नाम लिया हुआ ही नाम होता है वरन् निष्फल होता है। कृपया आप बतायें कि मुझे कैसे पता चल सकता है कि कौन पूरा है और कौन अधूरा है। उस दिन से मैं एक उलझन में फँस गया हूं। आपका किसी भाई से पता चला। मैंने सोचा कि आपके न्यायालय में अपना प्रार्थना पत्र भेजूँ। स्वामी जी महाराज के मत के अनुसार नाम कौन दे सकता है? यह एक ऐसी समस्या बनी हुई है कि जिसके सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है। आगरे वाले राधास्वामी नाम बताते हैं। व्यास वाले पांच नाम का सुमिरन देते हैं। सन्त कृपालसिंह जी राधास्वामी मत का नाम नहीं लेते। मैं इस मतभेद की बारीकियों को नहीं समझ सकता हूँ। आशा है कि आप इस पर प्रकाश डालेंगे। शेष बहुत कुछ अभ्यास और अनुभव के सम्बन्ध में प्रश्न हैं।

पत्र पढ़ा और कहता हूँ। कि ऐ इस संसार के शान्ति, सुख, निर्वाण और मालिक के दर्शनों के अभिलाषियो! मैं स्वयं इसी प्रकार की उलझनों में रहा हूँ, और इस व्यक्ति जैसे जन के प्रश्न पर और अन्य भाइयों और संसार के हित के लिये, आज निर्भय होकर कुछ कहना चाहता हूं। यद्यपि में समझाता हूँ कि मेरी बात को समझने वाले बहुत ही कम व्यक्ति हैं। इससे पूर्व कि मैं ऐसे व्यक्तियों को कुछ कहूँ, इन महात्माओं गद्दीपतियों, आचार्यों और गुरुओं को, जो नाम दान देते हैं, या संसार को सत् धाम, निर्वाण दिलाने के ठेकेदार हैं, उनको कहता हुं कि अपने लिये सच्चे बनो।

ऐ महात्माओ..! अपने अंतर प्रवेश करो अपनी आत्मा का हनन मत करो। चार दिन की गुरुआई, इन डेरे, धामों

को स्थित रखने के लिये ऐसे प्रचार और प्रौपेगन्डा की आज्ञा देते हो, जिससे कि जीव बिचारे जो निबल, अबल और अज्ञानी हैं, फँसे हुये हैं और दुखी होरहे हैं।

अपने मन में सोचो, सोचो और फिर सोचो कि जब वह तुम्हारा ध्यान करते हैं और जब वह मर जाते हैं तो क्या तुम उनकी सहायता करते हो? या ले जाते हो? यदि नहीं करते तो क्यों लोगों को स्पष्ट वर्णन न करके अपने जाल में फंसाना चाहते हो। तुम्हारा क्या परिणाम होगा?

ऐ संसार वालो! जो इस प्रकार के भ्रम में पड़े हुये हैं, उनके लिये मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि ऐ मानव! गुरु नाम है ज्ञान का, समझ का, अनुभव का, श्रद्धा का और विश्वास का।

ऐ मानव! तेरा मुक्ति दाता सच्चा ज्ञान, सच्ची समझ और सच्चा विवेक ही है। इसके समर्थन, पुष्टि और प्रमाण में उस शुद्ध स्वरूप, परम तत्व, मालिके कुल, सर्वाधार, ज्ञान के अवतार दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी की वाणी सुनाता हूँ।

"गुरु रूप न समझे कोय, भ्रम में पड़े अज्ञानी।" पूरा शब्द फ़कीर शब्दावली से पढ़ें। ऐ हंसराज! तुम जैसे प्राणी, जो भ्रम में आये हुये हैं, उन्हीं के हेतु मैंने यह काम किया है। किसी ने तुमको सचाई नहीं वर्णन की।

मैं तुमको जानता नहीं, देखा नहीं। किन्तु मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि तुम्हारा शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य गिरा हुआ है। यह मेरा अनुमान है; ग़लत भी हो सकता है। यदि तुमको देखा हुआ होता तो सम्भवतः किसी ठीक निष्कर्ष पर पहुँच सकता।

मेरे दिल में दर्द है। इस दर्द से लिख रहा हूँ। तेरे जैसे जीवों के लिये ही प्रकृति ने मेरी जैसी विभूतियों को प्रकट

किया है ताकि तुमको सच्चाई वर्णन कर जाऊँ।

तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देना नहीं चाहता था, क्योंकि पंथों के बाह्य आडम्बरों को धक्का पहुँचता है।

सन्त कृपालसिंह जी के सम्बन्ध में हुजूर बाबा सांवनसिंह जी ने मुझसे सन १९४२ में स्पष्ट कहा था कि मैंने लाखों को नाम दान दिया। उनमें से केवल दो, तीन सज्जन हैं, जो रहस्य ज्ञाता हो सके। इन दो, तीन में से एक नाम सन्त कृपालसिंह जी का भी लिया था।

हुजूर बाबा चरनसिंह जी के सम्बन्ध में जहांतक मेरा निज अनुभव है जो कि कुछ तो मेरा इनके साथ मेल मिलाप और कुछ वार्तालाप के आधार पर है और शेष कुछ सत्संगियों के वार्तालप से सम्बन्धित है।

अभी जब कि मैं यह पत्र लिख रहा हूँ, मेरे पास एक मास्टर सेवाराम जी बैठे हुए हैं। इनको भी ८ वर्ष से यही उलझन थी। इन्होंने इस पक्षपात में आकर, क्योंकि इनको व्यास के डेरे का पक्ष था, मेरी "मनुष्य बनो" पत्रिका के कितने ही अंक क्रोध में आकर जला दिये। किन्तु चूंकि इनकी आत्मा सचाई की इच्छुक थी, वह विवशतः इस अपने आन्तरिक भाव को रोक नहीं सकते थे। घसीटे हुए देहली सत्संग में आया करते थे। किन्तु घृणा वश अशाँत होकर सत्संग से वापिस चले जाते थे। क्यों? कि मैं वास्तविक गुरू रूप को अपने सत्संगों में व्यक्त करता रहता हूं। और यह गुरू की देह, डेरे और उनके कामों से बंधे हुए थे।

ऐ मित्र! अथवा अन्य सज्जनो! कबीर की वाणी सुनो:—

गुरू किया है देह को, सतगुरू चीन्हा नांहि।
कहें कबीर ता दास को, तीन ताप भरमाँहि॥
गुरू को मानुष जानते, ते नर कहियें अंध।

दुखी होंय संसार में, आगे यम का फंद ॥

इन्हीं सेवा राम ने अपने मन की दशा का उल्लेख दो, तीन बार पत्र द्वारा और मौखिक हुज़ूर बाबा चरनसिंह जी से किया और पूछा कि क्या वह मेरे पं० फ़क़ीरचन्द जी के सत-संग में जा सकते हैं ? तो बाबा चरनसिंह जी ने, जिनको कि मैं एक सत पुरुष समझता हूं, इनको कहा था और लिखकर भी भेजा था कि अवश्य जा सकते हो।

ऐ मित्र ! नाम गुरू का वाक्य है, वचन है।

गुरू जो कहें, सो हितकर मान।
गुरू जो कहें, सो चित धर ध्यान ॥

यह सत्संगी जन अपने अज्ञान और भ्रम वश एक दूसरे का खंडन करते हैं। यह काल और कर्म के मारे हुए हैं। और सबसे अधिक काल और कर्म के मारे हुए वह गुरू और महा-त्मा जन हैं जो अपने निज स्वार्थ, मान-प्रतिष्ठा, धन संपत्ति व डेरे धामों के लिये अपने सत्संगों में ऐसी संशय जनक और चतुराई की बातें करते हैं, जिससे कि जीव बिचारे वाह्य आडम्बर में फंसे रहें और इससे निकल न सकें।

इसलिये तम, अपने प्रश्नों को अपने गुरू महाराज के पास लेजाकर करो। यदि उनके उत्तरों से तुमको शान्ति मिलती है तो वहीं ठहरे रहो। नहीं मिलती तो दूसरे स्थान की खोज करो। किन्तु बुरा न मानना, हाथ बांधकर कहता हूं। यदि तुमने बचपन में विषय विकार का जीवन व्यतीत किया है और संसार की इच्छाओं में ग्रस्त हो, तो संभव है तुमको—किसी स्वतंत्र विचार सत्पुरुष, की वाणी से क्षणिक रूप में बौद्धिक शान्ति मिल जाय। किन्तु वास्तविक और सच्ची शान्ति और निर्वाण नहीं प्राप्त हो सकता। जब तक कि तुम्हारा विषय विकार का जीवन और संसार की इच्छायें, वासनायें समाप्त न

होंगी और तुम्हारा मन अपने अन्तर सुमिरन, ध्यान और भजन से थिर न होगा। वास्तविक नाम तो चौथे पद में है। वह नाम न राम २ है, न पंचनाम है और न शब्द राधास्वामी है। यह वर्णात्मिक नाम केवल मन को एकाग्रह करने के लिये हैं। वास्तविक नाम वह अवस्था है, जिस समय तुम्हारी पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ एकत्रित होकर, एकाग्रह हो जांय। इस एकाग्रता के परे जो अवस्था आयेगी वह नाम है और वही तुम्हारा और सच्चे गुरू का स्वरूप है।

नाम रहे चौथे पद माहीं। यह ढूँढ़ें त्रिलोकी माहीं॥

मैंने राधास्वामी नाम तथा वर्णात्मिक नाम के सहारे और दातादयाल जी के शुद्ध स्वरूप के हित और मत से इस गति को प्राप्त किया है। दूसरे किसी अन्य वर्णात्मिक नाम और किसी अन्य महापुरुष के हित और मत से इसको प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु मेरी उपरोक्त विधि शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन रहे। और जो संसार के समस्त कार्य व्यवसाय हैं उनको मौज पर छोड़ो। मैं न किसी का खंडन करता हूँ और न मंडन। अपने मन में विचार करो, सोचो समझो। यदि मेरे लेख में सचाई मिलती है तो कुछ दिनों मेरा सत्संग, करो जिससे कि मेरी रेडियेशन और विचारों से तुमको शान्ति मिले।

इस पत्र को पढ़कर इसकी प्रति लिपि अपने पास रख लो और इसको प्रति दिन प्रात.काल उठ कर पढ़ा करो। यदि तुम को मेरे लिखने में शंका सन्देह हो तो यह पत्र सन्त कृपाल-सिंह जी को दिखाकर उनसे सम्मति ले सकते हो।

पक्षपाती और कट्टर सत्संमियों की संगत से दूर रहो।

इस मेरे पत्र को पढ़ने के पश्चात् "मनुष्य बनो" को भेज देना, जिससे कि दूसरों का भी कल्याण हो।

दाता दयाल जी का कलाम

सब में हूँ सबका हूं, मुझ में सब अयाँ हैं सब निहाँ।
मुझ से बाहर कौन रहता है, यहाँ ज़र्फ़ी ज़माँ॥
सूरतें सब हैं मेरी, सब नाम मेरे नाम हैं।
मैं मकीं हूं सब में, सब रहने के हैं मेरे मकाँ॥
आब हूं सैलाब हूँ, गर्दाब हूं सैराब हूं।
मौजो क़तरों में, मुहीतो जुज़ो कुल हूँ बेगुमां॥
आक़िल हूं अदराक हूं, और दिल के सब जज़्बात हूँ।
जिस्म हूं ऐज़ाओ दिल हूँ, और रूह हूं हरदम रवां॥
परदये पिन्दार जब, आंखों के आगे हो पड़ा।
फिर नहीं मुझ तक पहुंच सकते, कभी वहमोगुमां॥

दयाल नन्द भाई जी का कलाम

बदकार जो बना है, दुख से बचेगा क्यों कर।
वह आप अपना दुश्मन, वह आप है सितमगर॥
करनी का पायेगा फल, वह अपने आप भाई।
छोड़ो बदी को करलो, तुम सोच कर भलाई॥
बद को बदी का समरा, मिलता है इस जहाँ में।
जो नेक हैं वह खुश हैं, ज़र्फ़ी ज़मां मकां में॥
नेकी बदी को जिसने, दिल से निकाल डाला।
वह ज़ात में समाया, अर्शी बरों से बाला॥
गुरुदेव राधास्वामी, हैं ज़ात पाक मेरी।
उनकी शरन में आकर, तबियत है चाक मेरी॥

सतगुरु महिमा लेः—परमदयाल फ़क़ीर साहबजी महाराज

बनाया जैसा किसी को, उस कारसाज़ दयाल ने।
करता है वह वैसा, अपने अपने ख्याल में॥

राम, खुदा, ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म, पारब्रह्म अथवा शब्द या प्रकाश कुछ भी कहो, उससे बढ़ कर सतगुरु की महिमा समझ में आई है। कैसे ? जीवन खोज में बीता। मैंने यह खोज आख खोल कर अर्थात निरपक्ष होकर जीवन की विभिन्न श्रेणियों को जिनसे यह जीवन बनता है, उनको दृष्टि में रख कर की है।

आज एक मित्र हैं, अत्यन्त बीमार हैं, आपरेशन आदि हुआ। उनको देखा। उनकी जन्म कुन्डली से ज्ञात हुआ कि उनके ग्रहों के प्रभाव से कष्ट का आना अनिवार्य था। मानव की उत्पत्ति में माता पिता का आहार, भाव, विचार, जलवायु, प्रभावित होते हैं। खाद्य पदार्थ आदि यद्यपि भूमि से उत्पन्न होते हैं किन्तु विभिन्न तारागणों की किरणें, विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

इसके अतिरिक्त हमारा जीवन प्रकाश और शब्द मय है। यदि यह न हों तो जीवन नहीं है। इस प्रकाश और शब्द के ही कारण समस्त रचना बनती है। यही सनातन धर्म कहता है और यही संत मत। सब धर्म प्रकाश को कर्त्ता पुरुष मानते हैं।

साथ ही हमारे अन्तर जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोध भान हैं, यह उस प्रकाश और शब्द के कारण उत्पन्न होते हैं। मेरे साधन और अभ्यास, जो मैंने अपने अन्तर में किया है और करता हूं, ने यह सिद्ध किया है कि सुरत स्वयं एक प्रकार की संवेदना (Sensation) है और वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोध भान से बहुत ऊँची और सूक्ष्म है, किन्तु इसकी उत्पत्ति आदि शब्द से होती है।

जब कभी यह सूक्ष्म से सूक्ष्म होती हुई आदि शब्द, आदि नाम तथा सार शब्द में लय होती है तो अपना आस्तित्व खो जाती है। उस समय मेरे लिये कुछ भी नहीं रहता है। संत

कबीर ने कहा है कि:—

जहां पुरुष तहां कुछ नाहीं, कहें कबीर हम जाना।
हमरी सेना जो कोई समझे, पावे पद निर्वाना॥

स्वामी जी ने कहा है—

नहीं ख़ालिक़ मख़लूक़ न ख़िलक़त।
कारज कारन नहीं वहां दिक्कत॥

इन महापुरुषों का ऐसी वाणी कहने से क्या भाव व
णय है, मैं नहीं जानता। किन्तु जो मैंने समझा है वह यह है
त, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोधभान उस
द पारब्रह्म, प्रकाश, और उन तारागण के कारण
होते हैं और जैसा २ किसी के अन्तर अस्तित्व की
र क्षोभ में शब्द और प्रकाश ने प्रवेश किया है अथवा
रागण के प्रभाव हैं, वैसा २ खेल प्रत्येक जीव जन्तु खेलने
विवश है। किसी के वश में कुछ नहीं है। इसलिये न
बुरा है, न कोई भला है। हम सब के सब अपना २ खेल
को विवश हैं।

"रचना राम रचाई साधो, रचना राम रचाई"

मानव इस खेल से दुखी व अशान्त हो जाता है तो
या अशान्ति को दूर करने के लिये प्रयास करता
तु वह पूर्ण रूपेण दूर नहीं हो सकता है।
तथा अनुभव से दुख सुख की चिन्ता
यह है कि मानव को यह ज्ञान होजाए
दि सच पूछो तो इस ओर आना
का खेल है।
जिसे आप जपावे।"
ज्योति स्वरूप से उत्पन्न होते हैं
और सुरत आदि शब्द, निज ना

समक्ष प्रकट हुये और उनकी अपनी आत्मा ने अपनी ही शाँति को अपने ही अनुभव से प्राप्त किया और उसको सत्य समझ कर संसार में उसका प्रचार किया।

इस वास्तविकता की अज्ञानता के कारण मानव जाति विभिन्न धर्म, साम्प्रदाय और पंथों में बँट गई। यह है क्या ? काल और माया का खेल है। मैंने स्वयं इन संस्कारों के अंतर्गत समस्त जीवन यात्रा की है। अंत में इस निष्कर्ष पर आया हूँ कि जीवन एक चेतन का बुलबुला है जो इस प्रकाश व शब्द की गति से बनता है। और अंत में उसी में समा जाता है। इस रचना का आदि अंत न किसी ने पाया न पा सका। ऊँचे से ऊँचा प्रभू बेअन्त स्वामी। कौन जाने गुन तेरे।

कोई कहता है मानव यह है, वह है। यह सब मानसिक और आत्मिक सहारे हैं, इनके कारण जीवन साहस और उत्साह पूर्वक बीत जाता है। किन्तु जब अन्त समय आ जाता है तब यह सब उत्साह और साहस समाप्त हो जाता है।

इस लिये यह समस्त धर्म, पंथ सराहनीय और प्रशंसनीय हैं, जिनके कारण मानवीय जीवन को साहस, उत्साह और सहारा मिलता है। किन्तु चूँक वास्तविकता का ज्ञान न होने से क्या क्या उपद्रव, अत्याचार हुये। बौद्धों के साथ क्या व्यवहार हुआ। हिन्दू मुसलमानों ने क्या क्या किया। यहूदियों और इसाइयों की क्या दशा हुई। इतिहास इसका साक्षी है।

इसलिये इस युग में उसकी मौज ने मुझे इस संसार में भेजा कि सचाई को व्यक्त कर जाऊँ। वह सचाई यह है कि "वह एक तत्व महान है' क्या है क्या नहीं। किसी को कुछ कहने का अधिकार नहीं है। जो गया उसकी खोज में स्वयं अपनी सुरत को निरत करते हुये अपनी ज़ात में लय हो गया। बस ! ज़ात का नाम कुछ भी रखलो। किसी ने निज रूप,

किसीने अकाल पुरुष, किसीने अनामी पुरुष, किसीने दयाल पुरुष, किसीने राधास्वामी तात्पर्य यह कि किसीने कुछ किसीने कुछ रक्खा।

जब तक जीवन है, शरीर, मन, आत्मा और सुरत सहारा चाहती है।

शारीरिक सहारा - मानव मानव के काम आवे। जिये और जीने दे।

मानसिक सहारा—मन के विचारों को नियन्त्रण में रखने के लिये सुमिरन और ध्यान है।

आत्मिक सहारा—अपने अन्तर प्रकाश और शब्द है।

सुरत का सहारा—ज़ात, निज घर, अकाल पुरुष, परम तत्व है?

चूँकि मुझको दाता दयाल जी के शुद्ध स्वरूप से यह ज्ञान मिला, इसलिये मुझे शान्ति है। संसार में रहता हुआ सुखी हूँ। इसी कारण गुरु की महिमा है। चूँकि सहारे के बिना जीवन नहीं। निष्काम कर्म करता हूँ। सुमिरन, ध्यान, भजन, आन्तरिक शब्द और प्रकाश मेरा सहारा रहता है।

मुझे वास्तविकता व्यक्त करने का कार्य सौंपा गया था वह कर रहा हूँ। जिसका जी चाहे सुने जिसका जी न चाहे न सुने।

दाता दयाल जी का कलाम

ख़ुदी अपनी अनलहक़ की सदा देकर ख़ुदा निकला।
जिसे हम किब्ब थे समझे, हुये सिद्को सफ़ा निकला॥
अबस की उम्र जाये दाम, नादानी में फंस फंस कर।
यह दुनियां तर्जुबा अब होगया, मक्रो रिया निकला॥
मज़म्मत किब्र की नासह, किया करता है क्यों हरदम।
हक़ीक़त में सिफ़त यह आप, शाने किब्रिया निकला॥
हमारी साँस की गरमी से, सब में गर्म जोशी है।

दिल के खिल गये गुन्चे, यही बादे सबा निकला ॥
मुन्नवर शम्शो अख्तर, हो रहे हैं आँख से अपनी।
नहीं तारीको तीरा यह है, बानूरो ज़िया निकला ॥
नहीं पहना है बेशर्मी का जामा, रूहे अक़्दस ने।
नक़ाबे जिस्म के बुरके में, बाशर्मी हुया निकला ॥
बगूले की तरह आवारागर्दी से, है क्या हासिल।
समझले दम में बेदम होगा, जिस दम यह हवा निकला ॥
न घबराना कभी दिल से, यह असरारे हक़ीक़त है।
इसीके तंग हुजरे से, खुला निकला भला निकला ॥
फ़ना कब नेस्ती है, यह फ़ना ही सच्ची हस्ती है।
फ़ना के बल से बेशक, यह ज़ाते बक़ा निकला ॥
सफ़ाई क़लब की है शर्त, आईना मुस्सफ़ा हो।
मिटा रंगे कुदूरत जब, ज़ियाये पुर ज़िया निकला ॥
खुदी को कर खुदाई, खुद को तू ज़ाते खुदा करदे।
खुदी में आई जब वसअत, तो 'ज़ाबित' क्या था क्या निकला ॥

President Johnson's Proclamation

For Thanks giving Day

Thanksgiving did not become an established holiday until 1863 when Abraham Lincoln issued a proclamation making it such. Thanksgiving falls on the fourth Thursday in November.

This year, President Johnson, in his proclamation said:

"As the harvest season draws to a close and our store houses bulge with the bounty of the land it is our desire to observe, in the custom and tradition of our forebars, a special day dedica-

ted to giving thanks to God—a day on which to lay aside our daily tasks and cares and pay joyous homage to Him. We are impelled to raise our voices in His praise and to proclaim our heartfelt gratitude for another year in which we have been blessed with a bountiful harvest, with intellectual, humanitarian, economic, scientific and technical advances and achievements and with other gains too numerous to mention.

"Although we have been blessed with unsurpassed prosperity, we recognise that poverty and want exist throughout the world—even among us—and we pledge ourselves to the eradication of those evils.....

" On this day. let us gather in our homes and in our places of worship and in other suitable places to give thanks to God for His graciousness and His generosity to us—to pledge to Him our ever-lasting devotion—to beseech His divine guidance and the wisdom and strength to recognise and follow that guidance—and to pray to Him that the forces of evil, violence indifference, intolerance and the inhumanity may soon vanish from the face of the earth and that peace, reason, understanding and goodwill may reign supreme throughout the world."
American Reporter November 25, 1964

मन का खेल [ले० परम दयाल जी महाराज]

आज संध्या समय अपने निवास स्थान पर था। एक माई
आई, उसने नमस्कार किया। वह बचपन से इस नाम, सुमिरन,
ध्यान और भजन के यत्न में है। मेरे सतसंग में आती रहती
है। उसने कहा—'महाराज जी कल प्रातः साधन में आपको
अपने अन्तर श्वेत रंग के प्रकाश में एक प्रकाशमान सिंहासन
र बैठा हुआ देखा। दर्शन से क्या मिला ? कह नहीं सकती।
नन्द ही आनन्द था। अब आप इतना बचन दें कि मेरा
ागमन समाप्त हो जाय।

... दातादयाल जी की दया
बात को सुना। नेत्र बन्द हो गये। हुजूर ने वर्णन
द आई। कृतज्ञता में सिर झुक गया। तू इस गति को
ा कि फ़क़ीर इस गुरुआई के कार्य से तुमको मेरे साथ लगाया है।
ा, जिसके लिये मौज ने वास्तविक सतगुरु के आन्तरिक
ालिक तथा ... से बचने की इच्छा थी। जैसी कि
... और

का विश्वास निज अनुभव, वाह्य कोई सच्चा निर्बन्ध,निरपक्ष, सत्यवादी पुरुष ही करा सकता है।

जीवों को दिलासा देने और उनके मन को सहारा देने के लिये मैं भी बहुत कुछ सत्संगियों को कहता रहता हूं। अपना ध्यान बता देता हूं। किन्तु यदि कोई जीव मुझे या अपने गुरु को फकीरचन्द पुत्र पं० मस्तराम या कोई और पुरुष समझता रहे तो क्या पता वह कहाँ जाये? नियमानुसार वह वहीं जायेगा जहाँ मैं या उनके गुरु जायेंगे। यद्यपि मैं प्रयत्न करता हूँ कि अपने आपको प्रकाश या शब्द के मंडल में या उससे आगे अलख, अगम देश में रक्खू। किन्तु यह कोई दावा नहीं है कि अन्त समय मेरी क्या दशा हो? यह मौज की बात है या मेरे कर्म हैं।

यदि 'ध्यान' न दिया जाये, तो मानव का मन बिना सुमिरन, ध्यान के एकाग्रह नहीं होता है। इसलिए ऐ संसार वालो! अपना इष्ट प्रकाश व शब्द रक्खो। या अपने अपने इष्ट को प्रकाश व शब्द स्वरूपी मानो। फिर तुम्हारी हानि न होगी। प्रथम तो तुम्हीं जीवन में प्रकाश व शब्द स्वरूप होने का प्रयास करो। इसी के लिये सुमिरिन, ध्यान और भजन हैं। जब तक यह श्रेणियाँ या सोपानें समाप्त नहीं होतीं। शुभ संकल्पमअस्तु के नियम के अनुयायी रहो, इसके सम्बन्ध में दाता का शब्द सुनाता हूं।

साधो मन को सूझ सुझाओ।
मन को सोधो, मन पर बोधो, मन ही लगाम लगाओ।
मन की दुबिधा दूर निकारो, चंचल मन ठहराओ॥
मन की खट पट सकल मिटाओ, उलझा मन सुलझाओ।
मन है अट पट मन है लटपट, झट पट मन बिलगाओ॥
शुभ संकल्प की राह बाट में, मन का घोड़ा कुदाओ।

राह रुकाना गुरू से पूछो, मन की चाल न जाओ ॥
सहस कमल दल कमल निहारो, दूजे त्रिकुटी आओ।
तीजे सुन्न महासुन्न निरखो, भँवर में बंशी बजाओ ॥
सतलोक चढ़ सुनो बीन धुन, मंगल साज सजाओ।
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, अजर अमर पद पाओ ॥

यह साधन जितना भी है, सबका सब मन का खेल है; जब तक है शुभ संकल्प रक्खो। आशावादी रहो। आवागमन से छुटकारा, गुरू ज्ञान से होगा। वह ज्ञान क्या है? समस्त भ्रमों से निकल जाओ। भ्रम क्या है? जितने दृश्य रूप, रंग, रेखा, जो अन्तर में दृष्टिगोचर होते हैं, इनको सत्य मानकर इनमें अटके रहना ही भ्रम है। जिस प्रकार कि यह माई कहती है कि उसने अपने अन्तर मुझे प्रकाश रूप में देखा। यद्यपि मैं नहीं था। यह उसका भ्रम है। इसी प्रकार और सब बातें समझ लो। यह भ्रम किसी पूरण पुरुष के सतसंग से जायेगा। वह भी उनका जो इस मंतव्य के लिये वास्तविकता की खोज में सतसंग में जाते हैं।

अनेक महात्मा जन अपने डेरों, गद्दियों और क्षेत्रों को स्थापित रखने के लिये ऊट पटांग कहकर संसार को अपने पीछे या किसी पन्थ के पीछे लगाने के लिये बहुत सी बातें रोचक और भयानक कहते हैं।

मुझे गुरु बनने की लालसा नहीं है। मैंने जीवन सचाई की खोज में बिताया है। जो समझा है। वह कहता हूं और अपने आपको उस परमतत्व सर्वाधार को समर्पित करता रहता हूं और शब्द प्रकाश का साधन करता रहता हूँ।

दाता दयाल की जात तथा निज रूप में मैंने मालिक को माना था, उनकी दया से मुझे रहस्य मिल गया और इस रहस्य को स्पष्ट रूप से बता रहा हूं।

यद्यपि वास्तविकता यह है कि मालिक की गति अपरम्पार है। ऐ मानव! मैं अपने निज अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ कि तू सच्चा बन और अपने आपको उस ज़ात जो कुल जगत का आधार है, उसको समर्पित करता रहा कर। संसार का काम पथिक-बनकर किये जा। जिसने संसार बनाया, वह आप तेरी संभाल करेगा। जहाँ तू सच्चा हुआ, वह मौज स्वयं तेरी देख रेख करेगी।

सम्भव है मैंने अपने जीवन में इस गुरुआई तथा परमार्थिक कामों में ग़ल्ती खायी हो, मुझे कोई खेद नहीं। मैंने कोई निज स्वार्थ या पांथिक स्वारथ नहीं रक्खा। दातादयालजी और हुजूर सांवले शाह का आदेश था, मैंने काम कर दिया। यदि त्रुटि पर हूँ तो वह दोनों शुद्ध स्वरूप उत्तरदायी हैं, मैं नहीं हूँ। मैंने अपना निज अनुभव कहा, जिसकी पुष्टि और समर्थन सत कबीर, राधास्वामी दयाल तथा आदि सन्तों ने अपनी वाणी में किया है। रहा अन्त समय गुरु के ले जाने का विचार इसका निर्णय १३-४-६४ वैसाखी मानवता मंदिर के उद्घाटन पर हो गया था। जिसका जी चाहे मानव कल्याण पुस्तक का अध्ययन करे।

ले ले चरण में अपने, बहु काम करा लिया है।
जो राज़ था मुख़फ़ी, उसे ज़ाहिर करा लिया है॥
मुझे अपनी शरण तू देदे, अपनी गोद ले ले।
संसार सारा उलझन, इससे मुझे हटाले॥
मांगूँ मैं प्रेम सच्चा, तू है अकाल सच्चा॥
अपनी भक्ति दे दे, अपना ही धाम दे दे।
ग़ल्ती नहीं है कोई, मैंने करी नियत से।
मुजरिम नहीं हूं, कहता हूं साफ़ दिल से॥

पुत्र दुरगादास जी ठेकेदार का पत्र चंडीगढ़ से अपने परम पिता परम दयाल जी को ।

मेरे प्यारे परम पिता । परम दयाल जी महाराज ॥
चरण कमलों में हाथ जोड़कर, शीश झुकाकर बारम्बार राधास्वामी।

अपने मन की दशा वर्णन नहीं कर सकता हूँ। चाहता हूँ यह मन मेरा थिर होजाय और सब कुछ भूल जाऊँ। मेरा कर्म न रहे। हुज़ूर क्या यह सम्भव है? मेरा मन मन में नहीं है। बेक़ाबू हो रहा है। इतना सूक्ष्म कि ठेस लगने पर फट न जाय।

शाहज़ादा बना, गोद फ़क़ीर की ली सम्हाल।
लिया शरण में अपने, किया लाड़ अपने लाल॥
संगत मिली गुरू की, मेहर दया से कर दिया निहाल।
सुमिरन ध्यान भजन का, दे देकर ख्याल॥
रहबर मिला, रहबरी, हो रही है दिन रात।
रगड़ा दिल को खूब, बना गुरू का नौनिहाल॥
गुरु ज़ात सिफ़ात है, गुरु है बाकमाल।
यों बाप की सिफ़ात से, हो गया माला माल॥
उँगली न उठे देखना, किसी की मुझ पर।
शान हो गुरू की, चले गुरू की चाल॥
निजात दुनियां से, बशर के लिये है बड़ी मुशकिल।
जीते जी निकल सकता नहीं, गर नहो गुरू दयाल॥
मेहर मुझ पर हुई, नज़र मेरी को ऊँचा कर दिया।
मिटा दिया भरम सब, असलीयत से मुन्हरिफ़ हूँ क्या मजाल॥
हर लम्हा हर घड़ी, चौकन्ना कर रक्खा है तेरे ख्याल ने।
मिटा कर मेरे दिल के, सारे वबाल॥
दिल से फेल कोई, न सरज़द हो, बन ज़ाबित।

कर शग़ल बातिनी बनूँ, परहेज़गार कर एहतियात एहतियात ॥

राह कठिन तेज़ धार, मैं अबला उम्मीदवार।
मिटा हस्ती मेरी, कटे सर से करम का भार ॥
भोग हँसी से, करम कटें पशेमानी के साथ।
पशेमानी, पशेमानी, पशेमानी, है इसका राज़ ॥
दिलबर दिल में बसे, मौज तेरी परवरदिगार।
कष्ट काहे व्यापै, यह समझ भक्ती का सार ॥
करम मेरा कोई नहीं, मेरा पना नहीं है मुझ में।
वास्ता दीन से रहा नहीं, न पाकबाज़न गुनहगार ॥
नाम तेरा शान तेरी, तेरी ज़ात पर इनहिसार।
मैं तुझ में तू मुझ में, ज़रा न हो इन्तशार ॥
दौर हो शान्ती का, शान्ती से हो मेरा हर काम।
शान्ती से गुज़र हो, शांती हो मेरा अन्जाम ॥
चरण राधास्वामी पर, सर हो मेरा आठों याम।
गुरू गुण गाया करे, दास जपे नित नाम ॥

हुज़ूर के चरणों में आठ दिन रहने, प्रातः सन्या सत्संग और बचन विलास, उसके प्रभाव से यह हृदय के उदगार निकलते हैं। यदि हुजूर उचित समझें तो "मनुष्य बनो" को भेज दें।

पत्रोत्तर परम दयाल जी प्रिय दुर्गादास जी के नाम।

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे सत्संग से जो परिवर्तन तुममें आया है, उसका आना अनिवार्य था।

मेरी इस समय अन्तिम अवस्था चल रही है। जब प्राणी शरीर त्यागने पर होता है तो उसका मन अपने अपने संबन्धों को त्यागने से घबराता है। क्योंकि उसके मन पर स्थूल, सूक्ष्म और कारण कोष चढ़े हुये हैं तो जब कभी ऐसा पुरुष मरने के समय या किसी ऐसे पुरुषका सत्संग जो मृत्यु समान अर्थात तीनों

से कुछ सतसंग प्रवचन उन्होंने मेरे पास भेजे हैं। मैं उनको मनुष्य बनो के ऐडीटर विश्व प्रेमी के पास भेजता हूँ ताकि वह जैसे चाहें प्रकाशित करें।

संतों या फ़कीरों की शिक्षा सैन बैन तथा संकेतों में रही है। मैंने उन्हें जान बूझ कर छोड़ दिया है। बिलकुल नंगी सचाई को प्रस्तुत किया है। क्यों? मेरे बस की बात नहीं। दातादयाल जी का आदेश था। फ़कीर! समय बदल जायगा। धर्म, पंथ समाप्त हो जायंगे। चोला छोड़ने से पूर्व शिक्षा को बदल जाना।

जो कुछ अनुभव किया, वह कहा। नक्काल नहीं बना। न स्वार्थ ही रक्खा।

समाधि का स्थान उजड़ा हुआ पड़ा था। उसकी टूट फूट होगई थी। प्रेम और आदर मान के विचार से कुछ सज्जनों ने दुबारा बनवादी है।

मुझे जितना काम दातादयाल जी ने दिया, वह मैंने कर दिया। जीवन के अन्तिम दिवस हैं। मैं चाहता हूँ कि यह शिक्षा जिसकी व्याख्या मैंने स्पष्ट शब्दों में कोई परदा न रखते हुए वर्णन की है, फैले। इससे संसार का कल्याण हो सकता है। पारस्परिक द्वेष, घृणा समाप्त हो सकता है। यदि कोई करना चाहे तब।

श्री कुबेर नाथ जी जो मेरी भाँति दाता दयाल जी के शिष्य हैं। उनको इस धाम की उन्नति का कर्तव्य सौंप आया हूँ। मैं आशा करता हूँ कि वह और अन्य सचाई के प्रेमी उस स्थान को आबाद रखने और उनकी सच्ची शिक्षा को स्वयं क्रियात्मक रूप से फैलाने का प्रयत्न करेंगे।

ट्रस्ट उस स्थान का दाता दयाल जी पहिले ही बना गये हैं। मुझे ज्ञात नहीं था वरन वह पवित्र स्थान कब का आबाद

हो गया होता। संभवत. मैं ही स्वयं वहाँ चला जाता। मौज ऐसी ही थी। मेरा बिचार था कि उस स्थान के मालिक उनके कुटुम्बी है।

मेरा अपना मार्ग केवल निर्वाण, परमार्थ का था और है। इसीलिए मौज उनके चरण कमलों में ले गई थी। शेष जो कुछ मैंने कहा वह प्रवृत्ति मार्ग के विचार से कहा। क्यों कि जन-साधारण परमार्थ या निर्वाण आदि के इच्छुक नहीं हैं। यद्यपि अब मुझे स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही भ्रम प्रतीत होते हैं।

यदि जीवन रहा तो आगामी वर्ष दशहरा के पश्चात इन्हीं दिनों में समाधि पर मनुष्य बनो का झंडा लगा आऊँगा। इस समय जन साधारण के लिए यही सीधा सुगम मार्ग मानवता का है।

प्रार्थना

एक पतित जीवन फ़कीर के रूप में, करता पुकार।
ऐ परम तत्व दयाल पिता, और जगत के आधार॥
कौन हूं मैं, क्या हूँ मैं? एक चेतन का बुलबुला।
जहां से बना उसकी खोज में, दिया जीवन गुज़ार॥
समझता हूं बहुत कुछ, कहता भी हूं बहुत कुछ।
पर दरअस्ल मैं ऐ दाता, पा न सका कुछ भी पार॥
जैसा बनाया वैसा कराया काम, कुदरत ने मुझ से।
मुझको नहीं है किसी कर्म फेल और, ख्याल का ज़रा अहंकार॥
दौड़ दौड़ के दौड़ देखा, अब आखिर में थक गया।
सोच समझ विवेक अनुभव से, होगया हूं लाचार॥
खींच ले सब ज्ञान अनुभव, खींच ले बुद्धि मेरी।
दे शरन अब अपनी तू, भूलूं मैं यह संसार॥
जब तक है जीवन होश दाता, माँगू मैं सदा।

दे अपनी ज़ात पाक का, मुझे अपना सच्चा प्यार ॥
तू है क्या ? मैं क्या हूँ ? कह नहीं सकता हूं ।
मगर तेरे होने से, हो नहीं सकता है मुझे इन्कार ॥
विश्वास था मुझे तेरा, तू आया बन शिवव्रतलाल ।
खेल खिलाया तूने ऐसा, जिससे समझा तू है अपरम्पार ॥
शरनागतम हूं शरनागतम हूँ, शरनागतम ।
हर तरफ़ से हटकर अब आया शरन में तुम्हार ॥
भेंट सब कर्म अपने तेरे, करता हूँ दयाल ।
मैं न कुछ कर सकता था, नहीं मैंने की कोई कार ॥
बस यहाँ आकर ही शान्ती, मिलती है मुझे ।
मौज तेरी काम तेरा, और तेरा ही है कुल संसार ॥

नोट—मेरे लेखों के पढ़ने वालो ! जब तक अंतिम सोपान मौनता की क्रियात्मक रूप से नहीं आती तब तक सुमिरन ध्यान, भजन, प्रेम प्रीत, भक्ति, निष्काम कर्म को मत छोड़ना। और सतसंग करते रहना वरन बौद्धिक ज्ञान से जो सम्भव है मेरे लेखों और साहित्य से तुमको मिले तुम गिरते रहोगे। किन्तु बिना इस ज्ञान के बाहर का भटकना समाप्त नहीं होता। यह साधन अभ्यास का विषय है। शुभ और अशुभ कर्म।

परम दयाल जी के प्रवचन राधास्वामी धाम में

कर्म करते हो, कभी सोचते हो कि यह शुभ है या अशुभ है ? शुभ कर्म क्या है, अशुभ कर्म क्या है ? सुनो जो कर्म दूसरों के हित के लिये किया जाता है वह शुभ है जो अपने स्वार्थ के लिये किया जाता है वह अशुभ है। जब स्वार्थ होगा तभी दूसरों से द्वेष होगा। प्रतिदिन सत्संग करते हैं कितने व्यक्तियों का सुधार होगया। कितने एक व्यक्ति हैं जो

शुभ और अशुभ कर्म को सोचते हैं ? "बिना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय।" वही उसका अशुभ कर्म हो जाता है। सतसंग से विवेक और विचार मिलता है। क्या उसे ग्रहण करते हो ? उसके अनुसार क्रियात्मक जीवन में लाते हो ? फिर सुधार कैसे हो ? जीवन साधन सम्पन्न बनाओ। तब तो सत-संग करने का कोई लाभ है। वरन् इस शुभ और अशुभ के ही चक्र में पड़े रहोगे और सतसंग का जो लाभ है वह प्राप्त नहीं होगा।

मैं सन् १९८५ में राधास्वामी मत में आया था। मैंने अपने पूर्वजों, ऋषि, मुनियों के विरुद्ध स्वामी जी की वाणी को पढ़ा कि पाराशर जी भूल गये, वशिष्ठ जी भूल गये, आदि आदि।

क्योंकि मुझको उनका पक्ष था इसलिये स्वामी जी की बाणी असमंजस उत्पन्न करती थी। मैंने उस समय प्रण किया था कि जो कुछ मेरी समझ में आएगा वह संसार को बता जाऊँगा। यह मेरी इच्छा थी। समझ में यही आया जो निम्नलिखित शब्द में दाता दयाल जी ने मुझे लिखा था।

"नर भोगें बारम्बार अवश्य फल कर्म किये का।" पूर्ण शब्द फ़क़ीर शब्दावली से पढ़ें। कोई गुरू, कोई ईश्वर, परमे-श्वर तुमको तुम्हारे कर्म से नहीं बचा सकता। जो तुमने किये हैं अवश्य भोगोगे। जो मैंने किये हैं मैं भोगता हूँ। लाख तुम ईश्वर ईश्वर, परमेश्वर २ कहा करो यदि तुम्हारे मन के विचार शुद्ध, पवित्र और शुभ नहीं हैं, तुम में द्वेष, ईर्षा है, घृणा है वा तुमको कौन तारेगा ? कोई नहीं।

रुपया देने से तुम नहीं तर सकते। भूल जाओ। रुपया इस विचार से देने से कि तुम दान पुन्य कर रहे हो, तुम अपने कर्म को और बढ़ा रहे हो। क्योंकि उसका फल भोगने के लिये तुमको दूसरा जन्म लेना पड़ेगा। किसी इच्छा को रख

कर तुमने किसी कर्म को किया तो उसका फल भोगने के लिये तुमको दूसरा जन्म लेना पड़ेगा। तुम या कोई बच नहीं सकता। क्योंकि उपरोक्त शब्द में स्पष्ट वर्णन किया है। यह उपदेश है, दातादयाल जी का। कितने व्यक्ति हैं, जो इसका पालन करते हैं। अपने जन्म को बनाने का प्रयत्न करो।

मैं जब दाता के दरबार में ताज लेकर गया था तो जो शब्द पढ़ा जा रहा था उसको अधूरा छोड़ कर ये शब्द मेरे लिये लिखा गया था। तुम मुझ से कैसे आशा कर सकते हो कि मैं ऐसा करूँ जिसमें मेरा निज स्वार्थ हो और दूसरे को हानि पहुँचे। मैं अपने जीवन में कोई ऐसा कर्म नहीं करना चाहता। विवशता में प्रारब्ध कर्म से चाहे कोई विचार आवे। किन्तु क्योंकि ज्ञान है इसलिये वह विचार जो उठते हैं तो उनको रोक देता हूँ।

कर्म जब होता है किसी वासना के अन्तरगत होता है। वासना के बिना हम जीवित नहीं रह सकते। इच्छा थी इस लिये दाता ने कहा था कि अपने लिए मत जिओ, दूसरों के लिये जिओ। समस्त संसार के लिये तो तुम जीवित नहीं रह सकते। प्रकृति ने जिनको तुम्हारे साथ लगाया है, उनकी निष्कर्म सेवा करो।

दातादयाल जी ने किसके लिये काम किया? अनेक दुखी उनके साथ लगे रहते थे। उन्होंने दूसरों के लिए काम किया। यही गीता की शिक्षा है कि ऐ अर्जुन तू कर्म कर और मेरे अर्पण करदे। कर्म का फल कब छूटेगा, जब निष्कर्म होकर कर्म करोगे। मैं यहाँ आया हूं मेरा कर्म निष्काम है। जो सेवा कर सकता हूँ, किये जाता हूं। कोई स्वार्थ न प्रियोजन!

जीवन का धेय क्या है? कि अपने कर्म को अनुकूल करलो। यह सोच समझ कहाँ से मिलती है? सत् गुरू से।

राम को अन्तिम आयु में उदासीनता आगई। सरयू नदी में भाई के साथ जाकर डूब मरे। उन्होंने क्या अशुभ कर्म किया था? उन्होंने मेरी समझ में, उनका जीवन बताता है, लोक लाज में आकर एक धोबी के कहने से एक ऐसी पतिव्रता स्त्री को जिसकी परीक्षा उन्होंने पहले ही लेली थी फिर भी उसका निर्वासन कर दिया था। क्यों किया? अपनी लोक लाज और मर्यादा परोक्षत्राम कहलाने के लिये। मेरी समझ में और कोई काम उन्होंने बुरा नहीं किया। यह समझ लो कि बाली को मारा इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं मिलती। उसको मारा केवल इसलिये कि सुग्रीव उनका साथी बन जाय। कर्म से वह वंचित कब थे। फल से न बच सके।

जो कुछ श्रीकृष्ण भगवान ने किया परिवृति मार्ग के विचार से १०० पैसे सत्य है। उन्होंने कोई त्रुटि नहीं की। किन्तु कर्म के चक्र से तथा आवागमन से वह भी नहीं बच सके। इसी प्रकार राम यदि आवागमन से बचे होते तो फिर इनका जन्म क्यों होता?

इसलिये इस काल चक्र और मन के जाल से निकालने के लिए सन्तों का प्राकट्य हुआ। यदि निकलना चाहते हो निकल जाओ। नहीं निकलना चाहते तो तुम्हारी इच्छा।

इस सचाई को फैलाने के लिए ही दातादयालजी ने यह धाम बनाई थी। जिसका जी चाहे इसका प्रचार करे जी चाहे न करे।

गुरु आज्ञा से जो तुम करई। सो करनी भक्ति फल देई॥

जो गुरु पद को प्राप्त हुआ, दुख जीते जी उसका समाप्त हुआ। दुचिता न रही, दुविधा न रही, निश्चिंत हुआ मन चिन्ता न रही॥

गुरु सदा हैं उसके रखवारे, जब आय पड़ा गुरु के द्वारे॥

शरणागत की है लाज उन्हें। क्यों व्यापे बतादो चिन्ता तुम्हें॥

गुरु भक्ति करो, गुरु चरण गहो। गुरु शरण में सच्चे सुख को लहो

ममता त्यागो मद को त्यागो। जग नींद से अब उठकर जागो॥
प्रीतम और प्रेमी दो नहीं हैं। क्या प्रेम की समझ तुम्हें नहीं हैं॥
जब मैं हूँ तो फिर गुरुदेव नहीं। जब गुरु हैं तोमैं नहीं रहा कहीं॥
कहां प्रेम में दो का ठिकाना है। जब तक यह नहीं प्रेम बहाना है॥
गुरु का मैं गुरु का मैं गुरु का। क्यों जग का सताने लगा खटका॥
राधास्वामी ने की है दया भारी। दिया प्रेम दान हो हितकारी।

मैं प्रत्येक वस्तु को क्रियात्मक रूप से अपने जीवन में देखने का इच्छुक था। सतगुरु से प्रेम किया। उनके आदेशानुसार चलते २ जहां पहुंचा हूँ, वहां न अब यादे दयाल रहती है, न यादे मालिक रहती है। यह मेरा परिणाम हो रहा है। अनेक बार चेतनता में आकर सोचता हूँ कि मैं पथ भ्रष्ट हो गया, पतित हो गया। मानसिक प्रेम, भक्ति जो मैं पहले करता था वह अब नहीं करता। पूज्य भाई नन्दूसिंह जी मिले। उन से कहा भाई जी मुझे क्या हो गया? अब यादे दयाल, प्रेम दयाल, गुम हो गया। यह मेरी अवस्था, खोज के क्रम में, जो निज अनुभव हुआ, उससे आई। अब सोचता हूं कि मैं पथ भ्रष्ट नहीं हुआ। ऐसा होना ही था।

यही अवस्था गुरु पद की प्राप्ती की है। इसका समर्थन और पुष्टी सत् कबीर के शब्दों ने कर दी। गरु भक्ती और नाम की भक्ती के पश्चात सत् कबीर की वाणी के अनुसार यही अवस्था आनी चाहिये। यही फल है नाम और गुरु भक्ति का।

दाता दयाल जी के आशीर्वाद का शब्द जो कि मेरे नाम है:—

"फ़क़ीर जा भव सागर पारा।"

इसमें दाता ने यह वर्णन किया है:—

गुरु से प्यार बढ़ाया तूने, गुरु चेला व्योहारा।

आगे कोई गुरू न चेला, आगे अगम अपारा ॥
कट गई काल कर्म की फांसी, जन्म जुआ नहीं हारा।
राधास्वामी की बलिहारी, रहे फ़क़ीर सुखारा ॥

इस निज अनुभव के पश्चात् विश्वास हो गया कि दाता का उपरोक्त शब्दः—

'जो गुरु पद को प्राप्त हुआ, दुःख जीते जी उसका समाप्त हुआ।' सत्य है।

आप सतसंगी भाई हैं। नाम लेते हैं। अपने अपने गुरुओं से प्यार करते हैं। सुमिरन, ध्यान, भजन भी करते हो। अपने मन में प्रवेश कर, अपने जीवन को देखो। कि क्या आपका चिन्ता दुःख व अशान्ति नहीं आती रहती है? क्या घरेलू सम्बन्धों के कारण दुःखी अशान्त और चिन्ता ग्रस्त नहीं होते हो? क्या आपको अपने इष्ट के प्रेम में विरह, तड़प, नहीं होती है? क्या आवागमन से बचने, मालिक के मिलने की चिन्ता नहीं सताती? क्या प्रेम में तुम कभी रोते नहीं हो? यद्यपि इस रोने में आनन्द है किन्तु परम सुख या शान्ती नहीं है। जहाँ मानव की यह सब अवस्थायें समाप्त होती हैं, वह गुरु पद है। शेष जो कुछ है वह शारीरिक, मानसिक या आत्मिक खेल हैं। इनमें जो सुख, प्रसन्नता, आनन्द मिलता है वह दुःख, चिन्ता और अशान्ती में परिवर्तित होता रहता है।

इसका उपचार अर्थात गुरु पद की प्राप्ती का क्या उपाय है? अपने प्रेम को बढ़ाते चलो।

देखो! जब किसी का कोई प्रिय मर जाता है, या अत्यन्त हानि हो जाती है तो वह खेद करता हुआ, रोता हुआ जब अपने उन विचारों का अन्त कर देता है तो उसको मानसिक, अचेतनता आ जाती है। ऐसे ही प्रेम की लगन में जो प्रेम का अंत कर देता है, तब उसका काम बनता है। अर्थात मानसिक

अवस्था में शान्ती आती है।

मैंने प्रेम का अंत कर दिया हुआ है। दाता दयाल जी की (स्टैच्यू) (मूर्ति) संगमरमर की जयपुर से बीमा कराई हुई रेल द्वारा आई। लकड़ी का बक्स जिसमें बन्द थी टूटा हुआ था। मैंने रेलवे कर्मचारियों को खोल कर दिखने के लिये कहा। जब वह बक्स खोला गया तो दाता दयाल जी के स्टेचू का सिर नीचे को था। यह दशा देख कर मैं अपने आप को सावधान न रख सका। बिलख बिलख, फूट फूट कर रोने लगा। क्योंकि मैं उनके शुद्ध स्वरूप से प्रेम करता था।

इसलिये सच्चा और वास्तविक गुरु पद कोई प्राप्त करना चाहता है तो वह जब तक प्रेम का अंत न करेगा शान्ती न मिलेगी। यह गुरु पद जिसका संकेत मैंने अपने क्रियात्मक जीवन से समझा है, नहीं मिल सकता। यदि तुममें शक्ति नहीं है तो किसी रहस्य ज्ञाता सत पुरुष की आज्ञा में रहो। और अपना जीवन उसकी आज्ञा पालन में समर्पन कर दो।

मैंने प्रेम भी किया, साधन, भी किया। किन्तु उनकी आज्ञा को माना जो यह मैं काम करता हूं, यह उनकी ही आज्ञा है। इस आज्ञा के पालन करने से मैं इस अवस्था को पहुँचा, जिसको मैं गुरु पद समझता हूँ।

रांझा राँझा कंह दीनी, मैं आप ही रांझा हुई।
सुनो री मेरी सखी सहेलियो, हीर न सदियो कोई॥

मैंने अपने इन सतसंगों में अपने आपको समय का सत-गुरु कहा है। क्यों? इसलिये कि मैं वह उपाय बताता हूं जिससे कि मानव को घरेलू, सामाजिक, शासिक, देशीय, मानसिक और आत्मिक रूप से सुख, शान्ति मिले। यह सौख्य, शान्ती ही परम पद, गुरु पद या लक्ष्य है। जब इस अंतिम पद में मानव की सुरत चली जाती है तो फिर वहां न मैं न तू, न गरु

न शिष्य, न योग न विचार, कोई नहीं रहता। वहां पहुँचने के लिये इस मन को घोटना पड़ता है। स्वामी जी की वाणी है।

"मन घोटो घट में लाई।"

इसके पश्चात फिर यह अंतिम अवस्था आती है। जिसको राधास्वामी दयाल ने ज्येष्ठ मास के आधार पर बारह मासा में वर्णन किया है।

लाखों सतसंगी हैं। कौन यह सच्चाई से कह सकता है कि उसको दुःख, चिन्ता किसी न किसी समय नहीं सताती है।

यह कर्म, प्रेम, लगन, स्वयं एक प्रकार का दुःख ही तो है। जब तक मानव को किसी वस्तु की खोज है, शान्ती कहाँ ? हां ! आनन्द, प्रसन्नता मिल सकती है। किन्तु यह भी सदैव न रहेगी।

जब तक किसी प्राणी को किसी वस्तु की खीज है, वह गुरू पद के योग्य नहीं। जब तक मानव को किसी वस्तु की इच्छा आशा है वह उस सोपान तक नहीं जा सकता है।

इस अन्तिम अवस्था को प्राप्त करने के लिये एक ही उपाय नहीं है। यह वाह्य पूर्ण पुरुष, जो स्वयं गुरू पद का वासी है, वही बता सकता है और वह सबके लिए एक ही नहीं होगा। यह है गुरू मत।

दयाल की माई की पोती और पोती का पति मेरे सन्मुख आए हैं। यह अपने जीवन की उन्नति के लिए मुझसे आदेश चाहते हैं। मैं सोचता हूं, क्या आदेश दूँ ? वही आदेश देता हूँ जो दाता दयाल जी के शुद्ध स्वरूप ने मेरी भोजाई राय साहब सुरेन्द्रनाथ की पत्नी लाजवती को दिया था।

बख्शो प्रेम का दाज, तुम प्रभू प्राण अधारे।
नाम रूप तजि शरण में आई, चरण ओट दो आज तुम ॥प्रभू०
मैं अबला बल शक्ति से खाली, हो पूरे बलराज तुम ॥ प्रभू०

प्रति प्रतीत पहिनाओ भूषण, अंग अंग दो साज तुम ॥ प्रभू०
घूंघट तिल में देखूं तुमको, हो सुरेन्द्र महाराज तुम ॥ प्रभू०
आँख की पुतली पै आसन मारो, हृदय में रहो विराज तुम ॥प्रभू०
नहीं किसी की अब हूं तुम्हारी, करदो मेरा काज तुम ॥ प्रभू०
राधास्वामी समरथ रखलो अबके, लाजवती की लाज तुम ॥ प्रभू०

मैं प्रेम की अति करने के पश्चात् लक्ष्य पर पहूँचा। और मुझे सब कुछ मिला। संसार के सब काम ठीक हुए। इसी प्रकार मेरी भौजाई अपने पति से दाता दयाल जी के आदेश। नुसार प्रेम करती थी। उसका जीवन बड़ा सुखमय, आनन्द-मय व्यतीत हुआ। उसका पति साधारणः शिक्षित था। मैट्रिक भी पास नहीं था। उसने दाता दयाल जी की आज्ञा का पत्लन किया कि जीवन का अर्थ काम और काम का अर्थ जीवन, का साधन करने से राय साहब की पदवी पाई। २५०० मासिक वेतन था। ट्रेफ़िक मैनेजर की पोस्ट से रिटायर हुआ। उसकी पत्नी अपने पति से प्रेम करती हुई सुखी रही। और अन्त समय यद्यपि उसने नाम नहीं लिया था, फिर भी मेरी पत्नी की गोद में अपने प्राण त्यागते हुए कहा, कि ऊपर प्रकाश है। घन्टा शंख बज रहे हैं। मैं वहां जा रही हूं।

इसलिए यही उपदेश दयाल की माई और उसकी पोती तथा उसके पति को देता हूं।

शास्त्र चार प्रकार की स्त्रियां वर्णन करते हैं।

प्रथमः—वह जो अपने पति के भय से अपने आप को नियत्रण में रख कर उसकी होकर रहती हैं।

द्वितीयः—वह जो लोक लाज, कुल मर्यादा और लज्जा को सम्मुख रखती हैं।

तृतीयः—वह जो अन्य पुरुषों को अपना भाई, चाचा,ताऊ आदि समझती हैं।

चतुर्थ:—वह जिसकी दृष्टि में अपने पति के अतिरिक्त और कोई पुरुष नहीं है।

यही बात सुरत के सम्बन्ध में है।

एक वह व्यक्ति हैं जो उस मालिक, ईश्वर या खुदा को डर के मारे याद करते हैं। दूसरे उस ईश्वर को अनेक रूपों में मानते हैं। कभी देवी, देवता, कभी कोई, कभी कोई। तीसरे वह हैं जो निज स्वार्थ के लिए अपनी कामनाओं को पूरा करने के लिए, उसकी उपासना करते हैं। चौथे वह हैं जो उसको अपनी ज़ात तथा निज स्वरूप समझ कर उसमें लय और मग्न रहते हैं।

मानवता मंदिर होशियारपुर पंजाब का तीसरा वार्षिक सतसंग

[ले० परम दयाल जी महाराज]

मानवता मन्दिर को स्थापित किये हुये यह तीसरा वर्ष है। इस वैसाखी पर १३—४—६५ और १४-४-६५ को मेरे कुछ मिलने वाले सतसंग का दिवस मनाना चाहते हैं। सोचता हूं—

क्या मिला फ़क़ीर तुम्हें, और कहाँ पहुँचा ज़िंदगी की तलाश में।
क्या कहना चाहता जग को, इस सतसंग कराने की आश में॥

ऐ जिज्ञासुओ! मालिक के मिलने की लालसा रखने वालो! निर्वाण तथा मुक्ति के इच्छुको! संसार में सुख शान्ति के चाहने वालो! मैंने इसी धुन में जीवन बिता दिया। और साथ ही ग्रहस्थ आश्रम, सामाजिक कार्यों और अन्य कार्य लीनताओं को कुशल पूर्वक करता रहा हूं। अब अंतिम आयु में आकर जब अपने निज अनुभव के आधार पर अकेला होता हूं तो ज्ञात होता है कि मैं शब्द स्वरूप हूं; और वह शब्द बोदी तथा शिखा सूत्र के स्थान पर गूँजता रहता है। उस समय मेरे शब्द स्वरूपी अस्तित्व में कोई अन्य वस्तु विचार,

रूप, रंग, रेखा नहीं रहती है। किन्तु जब आंखें खुलती हैं तो संसार दृष्टि गोचर होता है। चित, मन, बुद्धि, अहंकार अपना काम करते हैं।

इस अनुभव के आधार पर कहता हूं, मालिक जिसकी खोज मैं करता था, क्या निकला ? एक अस्तित्व शब्द स्वरूप का है। बस ! इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं समझ में आया।

क्या मैं कुछ बन गया ? क्या चेतनता में आकर किसी का कुछ भला कर सकता हूँ ? केवल इतना करता हूं कि समस्त संसार का भला चाहता हूं। प्राणी मात्र को शान्ति मिले। और कहता हूं कि उस मालिक के नाम पर ऐ मानव जाति ! तू व्यर्थ परस्पर बंट कर, संसार में द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, मत्सर क्यों रखती है। यह तेरा अज्ञान, भूल और भ्रम है।

चूँकि मैंने सन १९०५ में यह प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा। इसलिये मैंने यह सतसंग का कार्य अपने जीवन में निःस्वार्थ, निष्कट होकर किया है। साथ ही दाता दयाल जी, जिस शुद्ध स्वरूप की दया से मैं इस मन के चक्र को समझकर इसमें फंसता नहीं हूं। उनका आदेश था कि संसर के निबल, अबल और अज्ञानी जीवों को सहारा दूँ और जगत कल्याण हेतु कार्य करूँ। और उसी काम के लिये हुजूर बाबा साँवनसिंह जी ने भी विवश किया था। इसलिये मैंने साहस पूर्वक जो समझा, जो अनुभव किया निर्भय होकर कहता आ रहा हूं।

मैं नहीं कह सकता हूँ, न दावा करता हूं कि जो कुछ कहता हूं वही सत्य है। किन्तु जो कुछ अनुभव हुआ वह कहता रहता हूँ। इसलिये कि संसार पथ भ्रष्ट न हो जाय। मैंने और भी महा पुरुषों को जो सन्त मत के आचार्य व गुरु हैं, उनको भी निवेद देकर एक मंच पर लाने का प्रयत्न किया है ताकि वह

भी अपना अनुभव इस अवसर पर वर्णन करें, जिससे कि मेरे कारण यदि मैं त्रुटि पर हूँ तो कोई पथ भ्रष्ट न हो जाय।

मैं तो स्वयं निज अनुभव के आधार पर अपने आपको बदलने से रहा। जब तक कि मेरे निज अनुभव में परिवर्तन न आये। हो सकता है, यदि जीवन शेष है तो कुछ और अनुभव हो जाये। किन्तु अंतिम अवस्था इस समय तक खोज की यही सिद्ध करती है कि मैं शब्द स्वरूप हूँ। शेष जो कुछ मेरे अंतर से निकलता है वह नाशवान है। मैं ही नहीं प्रत्येक प्राणी शब्द स्वरूप है। शेष समस्त रूप रंग, रेखायें प्राकृतिक हैं और वह सब वाह्य संस्कारों के कारण हमारे अंतर प्रगट होती हैं। आचार्य पद पर आने से ऐ सतसंगियो! आपके प्रताप से अब इनमें फंसता नहीं हूं। इस जाल से निकलने के लिये दाता दयालजी ने यह अचार्य पदवीदी थी। उनके शब्द मेरे कानों में गूँजते हैं। "फ़कीर काम देता हूं। इसे करना। यह न समझना कि तुम किसी का बेड़ा पार करोगे बल्कि सतपुरुष राधा स्वामी दयाल तुमको सतसंगियों के रूप में दर्शन देंगे और तुम्हारा कल्याण होगा। चूंकि तुम सत्य प्रिय हो। आप तरोगे और औरों को भी तारोगे।

ऐ सतसंगियो! जिस अनुभव और ज्ञान से मैं तरा हूं, वही आप लोगों को बताता आ रहा हूं।

मैं इस अवस्था में आया हुआ सच्चा हित और मति देता हूँ। सम्भव है आपको मेरी रेडियेशन से लाभ पहुँच जाय।

अन्तिम आयु है। एक दिन शरीर त्यागना है। त्याग के पश्चात क्या होगा? कुछ नहीं कह सकता हूं। मौज जाने।

इसलिये जो सज्जन इस अवसर पर आना चाहें, बड़े प्रेम से आयें। दर्शन दे जांय। दर्शन ले जाँय। "नदी नाव संयोग है।"

मानवता मन्दिर सभा आपके ठहरने का क्या प्रबन्ध करे मुझे ज्ञात नहीं। अतः आप अपने आने की सूचना १५ दिन पूर्व मंत्री मानवता मन्दिर सुतहरी रोड होशियारपुर वालोंको देदेना।

आशा करता हूँ कि यदि जीवन रहा तो आप लोगों के और महा पुरुषों के दर्शन हो जायेंगे। आगे मौज मालिक।

मौज। संसार दुख की खान।

[ले० – परम दयाल जी महाराज]

मेरे बराबर के मकान में स० हक़ीक़त सिंह जी रहते हैं। वह गिर गये थे और उनके मर्म स्थल पर अत्यन्त चोट आई थी। एक महीने से अधिक अस्पताल में पड़े हैं। दशा चिन्ता-जनक है. विचार आया। यह संसार दुःखों की खान है। मेरा जीवन भी दुःखों से भरा हुआ है। अपना इतना दुःख नहीं है जितना कि इन सतसंगियों के दुखड़े सुनता रहता हूं। सोचा क्या कोई उपाय दुःख से बचने का है?

गौतमबुद्ध ने दुःख का भान किया और उससे बचने का उपाय सोचा। वह अपना अनुभव वर्णन कर गये। मैंने भी इसी धुन में अपनी आयु खोदी। जो कुछ मैंने समझा वह सन्तों का विचार, नाम की महिमा है। मैंने किसी की बात को अन्ध विश्वास से नहीं माना, जब तक कि स्वयं पर्ण रूप से अनुभव नहीं कर लिया। और जब तक कि मुझे शान्ति नहीं मिल गयी और न ही किसी को ग़लत रोचक या भया-नक ढंग से झूँठे आश्वासन अपने या सन्त मत के महत्व तथा बड़प्पन जताने के लिये दिये।

आज अकस्मात् जब मैं इन विचारों में था। सेठ दुर्गादास मेरे मकान पर हैं। क्योंकि यह मेरे वर्षों के मित्र हैं। और इनका मेरा प्रेम परमार्थिक है। यह सेवा भी करते हैं। विचार

आया। अपने ऋण व कर्तव्य से जो एक सतगुरु या पथ प्रदर्शक का है उससे उऋण हो जाऊँ। इनको कहा:—

मेरे जीवन का अनुभव यह बतलाता है कि जब तक मानव की सुरत अपनी किसी भी कल्पना तथा संकल्प को सत्य मान कर उस आश, या वासना जो हमारे संकल्प की आधार होती है, इससे परे नहीं जाएगा, इस वासना या आशा रूपी चक्र से बच नहीं सकता। क्योंकि हमारे जन्म मरण और कर्म का सम्बन्ध वासना से है। इसलिए वासना से परे जाए बिना दुःख सुख से बचना असम्भव है।

किन्तु मेरा अनुभव बता रहा है कि हमारी वासना हमारे संकल्प, हमारे अपने अधिकार में नहीं हैं। यह हो सकता है कि हम विशेष प्रकार के संकल्पों को छोड़ कर अन्य प्रकार के संकल्पों को लेलें। किन्तु जीवन में संकल्पों का रहना अनिवार्य प्रतीत होता है। हमारा जीवन है ही संकल्प का।

हमारे संकल्पों को बनाने वाला कोई और किसी बड़ी शक्ति का महान संकल्प है, जिसके आधीन हम सब हैं। संत मत में इसको काल पुरुष, कर्त्ता पुरुष कहते हैं। शास्त्रों में सोहं पुरुष कहते हैं। कोई उसे परवरदिगार, खुदा या ईश्वर कहते हैं।

आज दाता दयाल जी के शुद्ध स्वरूप की कृतज्ञता मानता हूँ, जिन्होंने मेरे जीवन को अनुभव से बिता कर यह ज्ञान करा दिया कि मैं और हूं और मेरे संकल्प और हैं। यह ज्ञान गुरू पदवी से मिला।

अब प्रयत्न करता रहता हूं कि संकल्प से ऊपर रहूँ। रहता भी हूँ। किन्तु संकल्प में आता रहता हूं।

अपने आप से पूछता रहता हूं कि क्या संकल्प और आशा से परे कोई वस्तु है। हाँ है। वह है आत्मिक चेतनता।

सब दुःखों से सदैव बचने के लिये क्या उपाय है ? वह यह है कि मानव का जब तक जीवन है, मानसिक संकल्प जो इसके अन्तर से सांसारिक, परमार्थिक, आशाएं उठती हैं, उनसे उदासीन हो जाए। जब तक जीवन है उठेंगी तो अवश्य किन्तु इस प्रबल इच्छा के अन्तर्गत कि मैं सदैव के लिये सुख दुःख से बच जाऊं। मानव इनके उठने और सांसारिक इच्छाओं के उत्पन्न होते हुए भी वह इस ज्ञान से संकल्पों में फंसेगा नहीं और इन अपने विचारों, संकल्पों, सांसारिक आशाओं को इस काल पुरुष की आशाएं समझता हुआ अथवा भगवान की इच्छा समझता हुआ अपनी सुरत को, इस आत्मिक चेतन्ता की ओर लगाए रक्खे और वहाँ साधन द्वारा ठहरने का प्रयत्न करे। यही नाम है। अथवा उस अवस्था का नाम ही नाम है।

मेरी इस आयु में यह अवस्था आरही है। मैंने अपनी प्यारी दुर्गियां को अपना अनुभव बतलाते हुए कहा ! ऐ मित्र तू मुझसे प्रेम करता है। सम्भवतः सतगुरू का रूप मानता हो। मैं अपने कर्त्तव्य को निभाता हुआ तुमको अपने जीवन का अनुभव बतला रहा हूं।

क्योंकि जन साधारण गुरु मत में सम्मिलित हैं। यह लोग अपने २ गुरुओं की प्रशन्सायें कर करके इनके गुणों के पुल बाँधते हैं। इसलिए इन विचारों को लेखनी बद्ध करके 'मनुष्य बनो' को भेज रहा हूं ताकि जो सचमुच यह चाहते हैं कि वह सदैव के लिए इस जन्म मरण से बच कर इस अध्यात्म के मंडल में जायें, जिसको सन्त मत वाले सत पद, अलख, अगम कहते हैं। इनको अपने कर्म भोग वश अथवा मौजाधीन या गुरु ऋण से उऋण होने के लिये बता जाऊँ कि अध्यात्मिक सत पद, निर्वाण क्या है ? वाह्य गुरु तुमको

सच्चा ज्ञान, सच्ची समझ, सच्चा भाव, सच्चा मार्ग बता सकता है। अथवा यदि वह स्वयं अध्यात्मिक पुरुष है, सत पद में रहता है तो उसकी रेडीएशन से तुमको सुख, शांति, आनन्द जब तक उसकी रेडीएशन है मिलेंगे। या कुछ समय तक जब तक रेडीएशन के प्रभाव तुम में स्थित हैं, मिलते रहेंगे।

अब रह गया यह प्रवृति मार्ग। यदि तुम हट धर्मी, पक्ष पात निज स्वार्थ से बचे रहोगे और अच्छे काम पुन्य दान, मधुर गान के अनुयायी रहोगे तो तुम अच्छी यौनियों में जीवन दुखों की अपेक्षा सुखों में बिताते रहोगे। किन्तु प्रत्येक भलाई से बुराई और बुराई से भलाई उत्पन्न होती रहती है। इसलिये स्थाई रूप से बचने का मेरी समझ में यही उपाय है कि मानव अपना इष्ट अध्यात्मिक चेतनता तथा सत पद रक्खे।

इस आत्मिक चेतनता को इष्ट बनाने के लिये पाँच नाम का सुमिरन अर्थात पाँच कोषों का अनुभव प्राप्त करना आरम्भ में अनिवार्य है। किसी ने पाँच नाम कह दिए, किसी ने पांच कोष कहदिये। किसी ने दसवें द्वार से आगे जाना कह दिया। यह सब शब्दों के हेर फेर हैं कोई इन श्रेणियों व सोपानों को प्रेम मार्ग से अनुभव करता है, कोई ज्ञान विचार योग से, कोई किसी प्रकार, तो कोई किसी प्रकार। सब धर्म अपने अपने ढंग से कार्य करते हैं और वास्तव में बौद्ध धर्म वालों का यह अष्टांग योग है।

यदि किसी को कोई रहस्य ज्ञाता मिला हुआ है तोवह इन सोपानों से अपनी युक्ति द्वारा शीघ्र पार करादेता है किन्तु अंत में जब तक आत्मिक चेतनता, सत पद, अलख, अगम की अवस्था न आयेगी मानव को स्थाई जीवन प्राप्त न होगा। यह मेरा अनुभव है कोई दावा नहीं है। प्रत्येक प्राणी को अपना निज अनुभव बताने का अधिकार है। इसलिए अपना अनुभव

वर्णन करता रहता हूं।

सत गुरू ज्ञान दीपक बरे, जो मन होवे थीरा।
कह दरिया संशय मिटे, हरे सकल सब पीरा॥

राधास्वामी जनरल सतसंग, हनमकुन्डा जि० वरंगल का ग्यारहवाँ संत सम्मेलन १९६५।

गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी बसंत पर हुज़ूर दातादयाल जी का वार्षिकोत्सव मनाने का प्रबन्ध किया गया है। होशियारपुर (पंजाब) से हुज़ूर परमदयाल फ़क़ीर साहब जी महाराज और निज़ामाबाद (दक्षिण) से हुज़ूर दयाल नन्दभाई जी महाराज इस उत्सव पर पधारेंगे। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विषयों पर अपने निज अनुभव और शुद्ध पवित्र विचार प्रगट करेंगे। तीन ताप से दुखी जीवों के लिये सुखी होने का अनुपम अवसर है। आशा करते हैं कि प्रेमी भाई, बहिनें पधार कर सतसंग का लाभ उठायेंगे और उत्सव की शोभा को बढ़ायेंगे।

सतसंग का कार्यक्रम

६ फ़र० सन १९६५ प्रा० ९ बजे से ११ बजे तक सांय ७ से ९ तक
७ फ़र० सन् १९६५ प्रा० ९ बजे से ११ बजे तक सांय ७ से ९ तक
८ फ़र० सन् १९६५ प्रा० ९ बजे से ११ बजे तक सांय ७ से ९ तक

लक्ष्मणसिंह प्रधान शंकरसिंह मंत्री

मौज [ले० परम दयाल जी महाराज]

जीवन में उस मालिक, परम तत्व, सर्वाधार, के मिलने की लालसा थी। मौज दाता दयाल जी के पवित्र चरणों में लेगाई। उनके शुद्ध स्वरूप ने सुरत शब्द योग द्वारा उस परम तत्व के

मिलने का विश्वास दिलाया। प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा। इसलिये लिखता हूँ। यद्यपि समझाता हूँ कि इसके समझने वाला और इच्छुक सम्भवतः ही कोई हो।

जीवन में जो निज अनुभव हुये वह कहता चला आ रहा हूं। आज रात को साधारणतः साधन आदि में रहा। ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं शरीर से निकल गया हूँ। वहाँ राधास्वामी नाम कहलो, सार शब्द कहलो, उस अवस्था में चला गया। वहाँ प्रकाश जो देखा जाता है, वह नहीं था। किन्तु शब्द की चेतनता विद्यमान थी।

अब सचेत हूं, सोचता हूं क्या मैं कुछ बन गया? किसी का कुछ बना सकता हूं? चाहता हूँ, संसार में सुख शान्ति आ जाय। केवल इस बात और इच्छा के कि मैं यह चाहूँ और कुछ नहीं कर सकता। फिर इस साधन से क्या मिला? यही कि जो मेरे मन के भीतर उस मालिक के मिलने की लालसा थी वह समाप्त होगई। या जो मेरी बुद्धि जीवन की समस्याओं को हल करना चाहती थी। वह हल हो गई।

इस अनुभव के आधार पर बहुत कुछ सोचता हूँ कि मुझे इस सुरत शब्द योग के साधन से जो कुछ मिला, क्या मैं किसी का उपकार कर सकता हूं? केवल एक उपकार कि जो मेरी भांति इस ईश्वर भक्ति, आवागमन से मुक्ति, निर्वाण आदि के चक्र में हैं, वह मेरे अनुभव से लाभ उठा सकते हैं। अथवा वास्तविकता को समझ कर परस्पर हम लोग जो धर्म, पन्थ, ईश्वर आदि के विचार से द्वेष, ईर्ष्या, घृणा व मत्सर आदि रखते हैं, वह दूर हो सकता है। अथवा अपने प्रेम श्रद्धा, विश्वास से लाभ उठा सकते हैं।

रहा हमारे जीवन के प्रारब्ध कर्मों का फल। मित्रो! वह दुख सबको भोगना अनिवार्य है। किन्तु इसमें रोना पीटना

जी ने उपरोक्त कड़ी में कहा है, इसलिए चूंकि मुझे ...
सोंपा हुआ है, कहता रहता हूं।

अनेक सज्जन इस सुरत शब्द योग से यह आशा रखते हैं कि उनके प्रारब्ध कर्म उन पर प्रभावित न हों। अभी तक मेरी समझ में नहीं आया कि ऐसा हो सकता है? कल कोई सतसंगी पल्टू साहब का शब्द बड़े प्रेम से सुना रहा था। उसे सुनकर मस्ती आती है। आनन्द मिलता है। सचाई टपकती है। शब्द योग और सन्तों की महिमा का पता चलता है। किन्तु इन्हीं पल्टू साहब, जो सन्त कहलाते थे, इनके सम्बन्ध में मुझे किसी ने बताया कि मत भेद और विरोध रखने वालों ने उनके साथ बड़ा अत्याचर और अन्याय किया। यह सुनकर बड़ा खेद हुआ। और मैं भयवीत होगया।

इसलिए मैं तो सदैव ही इस बात का अभ्यासी रहा हूँ कि "खोटे कर्म न करना, खोटी न बात कहना।" खोटा कर्म यही है कि अपने स्वार्थ, भाव, विचार, विश्वास, आदर, मान-प्रतिष्ठा, सम्पत्ति आदि को स्थित रखने के लिए ऐसी बातें कहना, जिनसे कि वह स्थित रहें और दूसरों की हानि हो। पल्टू साहब के साथ क्यों ऐसा व्यवहार किया गया? मेरे विचार में चूँकि उनकी वाणी में दूसरे धर्मों का खन्डन था और अपने सुरत शब्द योग को या अपने संतपने के विचारों को सबसे उत्तम और श्रेष्ठ समझते थे, या यह उनका प्रारब्ध कर्म था। मैंने भी इसी खंडन के कारण जो राधास्वामी दयाल, सत् कबीर आदि ने किया है, दुःख प्रतीत किया था।

किन्तु चूंकि मेरा दाता दयाल जी पर विश्वास था। मैंने प्रण किया था कि सचाई की खोज करके जो अनुभव होगा बता जाऊंगा। मेरा अनुभव यही निकला कि सृष्टि का आदि रचना करने वाला शब्द ही है। यहाँ जो कुछ हो रहा है, उसी के कारण है। हम सब उसी से निकले हैं, और उसी में समा जायेंगे। अपने अज्ञान और भ्रम वश शारीरिक और मानसिक रचना को सत्य मानकर हम दुख, सुख भोगते हैं। जब यह ज्ञान पूर्ण हो गया तब वह प्रारब्ध कर्म तो भोगेगा पर दुखी सुखी न होगा।

यद्यपि मैं अभी तक यह नहीं कह सकता कि स्थाई रूप से शरीर त्यागने के पश्चात मेरी क्या दशा होगी। अनुमान से जो इच्छा हो कहलो। इसलिए ऐ मित्रो! हृदय शुद्ध, पवित्र, स्वच्छ रक्खो। प्रेम, प्रीत का जीवन बिताते हुए, उस मालिक, परमतत्व, जिसका प्राकट्य प्रकाश और शब्द है, उसका आसरा रखते हुए जीवन व्यतीत करो। इस मन को रोकने के लिए सुमिरन और ठहराने के लिए ध्यान है। जहां जिस रूप, जिस नाम पर किसी को विश्वास है, उसके सहारे मानसिक शान्ति या थिरता प्राप्त करते रहो। अपने कर्तव्य के पालन करने का भरसक प्रयत्न करो। मानव मानव के काम आवे। यही सेवा पूजा, भजन और बन्दगी है।

यही है इबादत, यही दीनो ईमां।
कि काम आये दुनियां में, इन्साँ के इन्साँ॥

सार भेद ॥ मौज ॥ ले०-परमदयाल जी महाराज।

क्या यह तेरा लिखना, लिखाना, सतसंग कराना।
अभिमान नहीं है, बतादे तू ऐ मेरे ज़मीर॥
अभिमान तो नहीं, मगर इज़हार की सूरत तो है।

किन्तु शारीरिक बन्धनों के दृश्य और मस्तिष्क पर पड़े हुए प्रभाव कभी २ इस प्रकाश व शब्द में आते रहते हैं। मेरे बस की बात नहीं है। प्रयत्न करता रहता हूँ। दृश्य जब कभी आते हैं, उनको रोकता रहता हूं।

शरीर के स्थायी त्याग के पश्चात क्या होगा ? मैं कुछ नहीं कह सकता हूं। मालिक सामर्थ्य दे कि मैं बता सकूं, कि मैं कहां गया ? अनुमान से तो यही कह सकता हूं कि यदि कोई दृश्य न आया, तो मेरी ज़ात, शब्द और प्रकाश है जो पहले भी और फिर भी वही हो जायेगी। जीवन के प्रभाव समाप्त हो जांयगे। यदि दृश्यों में फंसा तो योनियां अवश्य लेनीपड़ेंगी।

आदि में भी आप हूँ, और अन्त में भी आप हूँ।
मध्य अवस्था में यह झगड़ा, और मचाता उत्पात हूं॥

इस अनुभव के आधार पर यह अनिवार्य है कि मानव किसी रहस्य ज्ञाता के सत्संग से वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करे। फिर अपने आपको साधन सम्पन्न बनाये। चूँकि यह सचाई यह महात्मा, महापुरुष और संतजन नहीं वर्णन करते और जनसाधारण को अपने २ पन्थों व डेरे, धामों के साथ बाँध रखते हैं, इसलिये कर्म भोग वश सचाई को स्पष्ट रूप से बता रहा हूँ।

यद्यपि इस सचाई के अधिकारी बहुत ही कम व्यक्ति हैं। और सतसंगी भाई तो:—

कोई फंसा सहस्रदल कमल में, कोई त्रिकुटी के जाल में।
कोई सुन्न महासुन्न में गरक हो, फंसा माया काल में॥
सोहंग में फंसकर, रहा कोई मन की चाल में।
बहुत ही कम जा सके, अपने आदि पद दयाल में॥

दाता का शिव रात्रि वार्षिकोत्सव दयाल धाम में १ मार्च का है उस दयाल देश में जाने के लिये पूरण, निर्वासना व निर-

च्छित होने की आवश्यकता है। जब तक मन में इच्छायें हैं, यह आशा मत रक्खो कि कोई शब्द और प्रकाश के मंडल में जा सकेगा।

फिर क्या करना चाहिए? जब तक जीवन है उस शब्द, प्रकाश का इष्ट रखते हुए, उसका विश्वास रक्खो। चलते रहो, एक दिन लक्ष्य को पालोगे। जब तक शब्द और प्रकाश नहीं खुलता है। अपने २ गुरू को शब्द स्वरूप मान कर सुमिरन, ध्यान में लगे रहो।

नोटः—चूँकि मेरे अनुभव में आया है कि शब्द व प्रकाश के मंडल में भी साधन अवस्था में कोई न कोई दृश्य आता रहता है, जिसको मैं दूर करता रहता हूँ। यह दृश्य या रूप सब के सब मायावी होते हैं। इसलिए सर्व श्रेष्ठ उपाय यह है कि साधन के समय सत गुरु स्वरूप का दर्शन करो, जोकि अत्यन्त लाभ दायक है। यद्यपि वह है तो मायावी किन्तु उस रूप में हमने उस गुरु स्वरूप को शब्द और प्रकाश रूप माना है। वह रूप हमारा सहायक होता है। शास्त्र भी कहते हैं कि माया ही फंसाती है और माया ही निर्बन्ध करती है। इसलिए मायावी दृश्य फँसाते हैं और मायावी दृश्य स्वरूप ऊँचा ले जाकर हमको निर्बन्ध करता है।

सोचता हूँ कि क्या संसार को सचाई की आवश्यकता है? नहीं, फिर तू क्यों लिखता है। मौज मालिक या मेरे प्रारब्ध कर्मों के संस्कार, दूसरों के कल्याण की भावना प्रतीत होती है। इसलिये जनसाधारण के लिये मानवता की शिक्षा है कि अपने विचारों को शुद्ध, पवित्र और श्रेष्ठ बनायें। शुभ संकल्प अस्तु, जिस कि मानव का इस माया देश का जीवन उत्तम व श्रेष्ठ हो सके।

हम सबके सब प्रकाश स्वरूप हैं। इस शरीर में आने के

कारण हमारे प्रकाश और शब्द मे जो बोध-भान उत्पन्न होते हैं, हम अपने अज्ञान वश उनको सत्य मान कर उनमें फँसे हैं। यह सन्त मत मानव को सच्चा ज्ञान देकर अपने शब्द और प्रकाश में ले जाता है। बस बात इतनी ही है। सर्व साधारण ने संसार को सत्य मान कर अपने आपको इसमें फंसा रक्खा है यही काल और माया है।

'विश्व प्रेमी' व देवीचरन आपको आशीर्वाद देता हूं कि आपने एक मेरे जैसे सत्य प्रिय पुरुष की निस्वार्थ सहायता की है, कि मैं सचाई वर्णन कर सकूँ। आपका भला हो। अब चल चलाव का समय है। प्रसन्न रहो

प्रगटा जग में यह फ़क़ीर, बन दीन दयाला।
गुरु ने रक्खा नाम, मेरा ही परम दयाला॥
बन परम दयाल, राज़ को मैंने है खोला।
सुनो अधिकारियो! नहीं रक्खा कोई ओला॥
जो कोई मेरी बात विचारे, और बनेगा आमिल।
निकल जायेगा काल माया से, सत पद हो हासिल॥
सत पद है नूर शब्द का मंडल, और सत् नहीं कोई।
बिन गुरु ज्ञान न पावे कोई, यह गति भाई॥
सत् पद हमारी सुरत है, सुरत ही सत सरूपा।
दाता सत् रूप हमारे, दिखाया निज रूपा॥
तुम सब कोई सत् सरूप हो, सत के रूपा।
काल माया वश होके, तुम फंसे भव कूपा॥
राधास्वामी मत में आयकर जो समझा बतलाया।
अपना काम किया, और गुरु का हुक्म निभाया॥
धन नहीं मांगूँ, मान न माँगूँ, और न कुछ भी भाई।
सुरत से मेरे बचन सचाओ, तब अपने घर जाई॥

चित्रा प्रेस के लिये राघव प्रेस अलीगढ़ में मुद्रित।